भगवान हनुमान

श्री हनुमानजीको रात्रि निवास दरम्यान परिवारजनोंके साथ
वार्ता-विनोद करते हुए आकाशमेंसे तारा खिरता देख वैराग्य उत्पन्न होता है।

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

भगवान श्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं. २७०

ॐ

श्री मुनिसुव्रततीर्थंकरदेवाय नमः।

भगवान हनुमान

(सती अंजनाके पुत्र चरमशरीरी भगवान हनुमानका जैन पुराणोंके आधार पर लिखा गया जीवन चरित्र)

卐

: गुजराती लेखक :

ब्र. हरिलाल जैन

सोनगढ

卐

: हिन्दी अनुवादक :

पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा, (राज.)

卐

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०

प्रथमावृत्ति प्रत : १००० वि.सं. २०७५ ई.स. २०१९

भगवान हनुमान (हिन्दी) के

✽ स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता ✽

छगनलाल कालीदास वाधर परिवार, जामनगर

हस्ते आत्मार्थी भानुबेन, विद्याबेन एवं

जसवंतीबेनके स्मरणार्थ

ॐ

સહજ ચિદાનંદ.

मूल्य रू. 10=00

: मुद्रक :

स्मृति ओफसेट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

प्रकाशकीय निवेदन

हमारे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनको इन महापुराण पुरुषोंके प्रति सहज अहोभाव उल्लसिक होता था, जिनका प्रमाण है पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंमें पुराणोंके अनेक उदाहरण एवं तीर्थधाम सुवर्णपुरीके जिनालयोंकी दिवारों पर उत्कीर्ण अनेक पौराणिक दृश्य। इन उभय धर्मात्माओंके प्रतापसे ही प्रथमानुयोग समझनेकी दृष्टि प्राप्त हुई है, वरना मात्र कथा–कहानियोंको ही प्रथमानुयोग समझा जाता था।

हनुमानजीकी माता महासती अंजनाका जीवनचरित्र 'दो सखियाँ' पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है। उस पुस्तकमें हनुमानके जन्म तककी कथा है। इस पुस्तकमें हनुमान जैसे मोक्षगामी महात्माकी सुंदर कथा है, उनके बालपनसे लेकर मोक्ष तककी आनन्ददायी कथा पढ़ते हुए छोटे-छोटे सभी आनंद होगा। सती अंजना संसारसे विरक्त होकर आर्यिका बनकर स्वर्गमें जाती है और हनुमान भी दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह सब पढ़कर हमें भी अपने जीवनमें धर्मके उत्तम संस्कार ग्रहण करने योग्य हैं।

प्रस्तुत पुस्तकका गुजरातीमें लेखनकार्य ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, सोनगढ द्वारा जैन पुराणोंके आधारसे की है। इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। उसका हिन्दी अनुवाद पंडित देवेन्द्रकुमार बिजौलिया द्वारा किया गया है। तदर्थ उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते है।

पवित्र जिनमार्गकी आराधनाकी प्रेरणादायक इस चरित्र ग्रन्थका अध्ययन कर सभी जीव निज आत्महितकी साधनामे आगे बढ़े यही भावना सह...

पूज्य बहिनश्रीकी
१०६वीं जन्मजयंती
दि. १७-८-२०१९

साहित्यप्रकाशक समिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ (सौराष्ट्र)

जैन पौराणिक कथाओंका तात्पर्य

चारों अनुयोगका सार, सर्व सिद्धांतका सार, दिव्यध्वनिका सार क्या है? वह बताया जाता है :—

भगवानकी वाणीमें—चारों अनुयोगमें यह आया है कि "जो जिनेन्द्र है वह ही आत्मा है"—ऐसा मनन करो। आत्माका सर्वज्ञ और वीतराग होनेके पश्चात् जो वाणीमें आया है वह ऐसा आया कि, "हम जो स्वरूपसे हैं उतना ही स्वरूप तुम हो और तू जो स्वरूपसे है, वह स्वरूपसे हम हैं"— परमेश्वरके स्वरूपमें व आत्माके स्वरूपमें कुछ फरक नहीं है। दो वस्तुस्वरूपसे भिन्न है, पर भावस्वरूपसे भिन्न नहीं हैं।

जिन आत्माओंने स्वयंके स्वरूपको वीतराग ज्ञाता-दृष्टारूपसे जानकर भेदका लक्ष्य छोड़कर अभेद चैतन्यका साधन किया, उन आत्माओंकी कथाको पुराण (जैन पौराणिक कथा) कहते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि साधना करनेवालोंका वर्णन पुराणोंमें (जैन पौराणिक कथाओंमें) है। उन सब वर्णनमें क्या आता है? कि ये सभी शलाका पुरुषोंने 'वीतराग प्रभु जैसा ही मैं आत्मा हूँ, उनको मोक्ष प्रकट हो गया है व मेरा मोक्ष स्वभावमें भरा हुआ है'—"ऐसे आत्मा-तत्त्वको वीतराग परमात्मा जैसा" उन शलाका पुरुषोंने जाना था वह ही प्रथमानुयोग (कथानुयोग)में कहनेका तात्पर्य—सार है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

ॐ

श्री मुनिसुव्रततीर्थंकरदेवाय नमः

सती अंजना के पुत्र, मोक्षगामी

भगवान हनुमान

जैनधर्म के बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत भगवान मोक्ष पधारे, तत्पश्चात् उनके शासन में भगवान रामचन्द्र, भगवान हनुमान इत्यादि अनेक महापुरुष मोक्षगामी हुए, उनमें से श्री हनुमान की यह कथा है।

मोक्षगामी भगवान हनुमान, उनकी माता सती अंजना; वह अंजना पूर्व भव में एक राजा की पटरानी थी, तब अभिमान से उसने जिनप्रतिमा का अनादर किया था, इसलिए इस भव में अशुभकर्म के उदय से उस पर कलंक लगा और उसका अनादर हुआ। प्रथम तो उसके पति पवनकुमार / पवनंजय उससे नाराज हुए; पश्चात् सास तथा पिता ने भी उसे कलंकित समझकर निकाल दिया। अपनी सखी के साथ वह वन-जंगल में रहने लगी और वहाँ मुनिराज के दर्शन से उसका चित्त धर्म में स्थिर हुआ। उस अंजना ने जंगल में ही हनुमान को जन्म दिया।

श्री हनुमान के पूर्व भवों का वर्णन

जिनका मूल नाम शैलेष है, ऐसे उन हनुमान का जीव पूर्वभव में एक सेठ के यहाँ 'द्रमवन्त' नामक गुणवान पुत्र था। उसने वन

में एक मुनिराज से उपदेश सुनकर सम्यग्दर्शन तथा व्रत अंगीकार किये और भक्ति से मुनियों का आहारदान दिया। वहाँ से समाधि-मरण करके वह जीव स्वर्ग में गया, पश्चात् वहाँ से राजपुत्र होकर पुनः स्वर्ग में गया।

तत्पश्चात् वह हनुमान का जीव भरतक्षेत्र के विजयार्द्धपर्वत पर 'सिंहवान' नामक राजपुत्र हुआ, वह धर्मात्मा और गुणवान राजपुत्र एक बार विमलनाथ भगवान के समवसरण में गया, प्रभु का उपदेश सुनकर उसका चित्त संसार से विरक्त हुआ, इसलिए आत्मज्ञानपूर्वक इस असार संसार का परित्याग करके उसने वीतरागी मुनिधर्म अंगीकार किया और सारभूत रत्नत्रयरूप निजभावों में निश्चल होकर ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करने लगा। उन मुनिराज को तप के प्रभाव से अनेक लब्धियाँ प्रगट हुई थीं, उनके शरीर को स्पर्शित करके आयी हुई पवन, रोगी के रोग हरण कर लेती थी। वहाँ से वह हनुमान का जीव समाधिमरण करके सातवें स्वर्ग में गया, वहाँ देवलोक की अद्भुत विभूति के बीच रहने पर भी उसे आत्मा के परमपदरूप मोक्ष की ही निरन्तर भावना रहती थी; इसलिए वह स्वर्ग के सुखों में मग्न नहीं हुआ, अपितु उनसे भिन्न इन्द्रियातीत चैतन्यसुख की आराधना उसने चालू रखी।

स्वर्ग में से निकलकर वह धर्मात्मा जीव, अंजनी के गर्भ से हनुमानरूप से अवतरित हुआ। यह उसका अन्तिम ही भव है। वह कामदेव होने से अत्यन्त रूपवान, महान पराक्रमी, वज्र शरीरधारी और चरमशरीरी है। वह इसी भव में भव का अन्त करके मोक्ष को साधेगा। चरमशरीरी जीव हमेशा वज्रसंहननवाले होते हैं। हनुमान भी बज्रशरीरी होने से बज्र-अंग कहलाते थे। बज्र-अंग में से भाषा

परिवर्तित होते-होते बज्जर-अंग और अन्त में 'बजरंग' शब्द हनुमानजी के लिए प्रसिद्ध हुआ।

अंजना माताजी के साथ हनुमानजी की चर्चा

महान पुण्यवन्त और आत्मज्ञानी धर्मात्मा ऐसा वह बालक 'हनुरुह' नामक द्वीप में आनन्द से वृद्धिगत हो रहा है। अंजना माता अपने लाड़ले बालक को उत्तम संस्कार देती है और बालक की महान चेष्टाएँ देखकर आनन्दित होती हैं। ऐसे अद्भुत प्रतापी बालक को देखकर जीवन के सब दुःखों को वह विस्मृत कर गयी है और आनन्द से जिनगुणों में चित्त लगाकर जिनवर प्रभु की भक्ति करती है। वनवास के समय गुफा में जिनके दर्शन हुए थे, उन मुनिराज को बारम्बार स्मरण करती है। छोटा सा कुँवर 'हनु' भी प्रतिदिन माता के साथ ही मन्दिर जाता है, देव-गुरु-शास्त्र की पूजा करना सीखता है और मुनियों के संग से आनन्दित होता है।

एक बार बालक को दुलार करते हुए अंजना पूछती हैं—'बेटा हनु! तुझे क्या रुचता है?'

हनुमान कहते हैं—'माँ! मुझे एक तुम रुचती हो और एक आत्मा का सुख रुचता है।'

माँ कहती है—'वाह बेटा! मुनिराज ने कहा है कि तू चरमशरीरी है, इसलिए तू तो इसी भव में मोक्षसुख प्राप्त करनेवाला है और भगवान होनेवाला है।'

कुँवर कहता है—'वाह माता! धन्य वे मुनिराज! और हे माता! मुझे आप जैसी माता प्राप्त हुई, फिर भला मैं दूसरी माता क्यों करूँगा? माँ! तुम भी इस भव में आर्यिका बनना और भव का छेद करके एकाध भव में ही मोक्ष को प्राप्त करना।'

अंजना कहती है—'वाह बेटा! तेरी बात सत्य है। सम्यक्त्व के प्रताप से अब फिर से कभी ऐसी निन्द्य स्त्रीपर्याय प्राप्त होनेवाली नहीं है; अब तो इन संसार दुःखों का अन्त निकट आया है। बेटा! तुम्हारा जन्म हुआ, तभी से दुःख मिटे हैं और अब संसार दुःख भी अवश्य मिट ही जायेगा।'

हनुमान कहते हैं—'हे माता! संसार के संयोग-वियोग कैसे विचित्र हैं! जीवों के प्रीति-अप्रीति के परिणाम भी कैसे चंचल और अस्थिर हैं! एक क्षण में जो वस्तु प्राण से भी प्रिय लगती हो, दूसरे क्षण में वही वस्तु ऐसी अप्रिय हो जाती है कि देखना भी नहीं रुचता! और फिर वापस वही वस्तु प्रिय लगने लगती है - इस प्रकार पर के प्रति प्रीति-अप्रीति के क्षणभंगुर परिणामों द्वारा जीव आकुल-व्याकुल रहा करता है। मात्र चैतन्य का सहज ज्ञानस्वभाव एक ही स्थिर और शान्त है; वह प्रीति-अप्रीतिरहित है। उस स्वभाव की आराधना बिना अन्यत्र कहीं सुख नहीं है... नहीं है।'

अंजना कहती हैं—'वाह बेटा! तेरी मधुर वाणी सुनते ही आनन्द होता है। जिनधर्म के प्रताप से हम भी ऐसी आराधना कर ही रहे हैं। जीवन में बहुत देखा, दुःखमय इस संसार को असार जान लिया है; बेटा! अब तो बस! आनन्द से मोक्ष को ही साधना है।'

—इस प्रकार माता और पुत्र (अंजना और हनुमान) बहुत बार आनन्द से परस्पर में चर्चा करते हैं और एक-दूसरे के धर्म संस्कारों को पुष्ट करते हैं। राजपुत्र हनुमान, विद्याधरों के राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुरुह द्वीप में देव की भाँति रमता है और आनन्दकारी चेष्टा द्वारा सबको आनन्द प्रदान करता है। ऐसा करते-करते वह नवयौवन दशा को प्राप्त हुए; कामदेव होने से उनका रूप सोलह

कलाओं से खिल उठा। भेदज्ञान की वीतराग विद्या तो उन्हें थी ही; तदुपरान्त आकाशगामित्व इत्यादि अनेक पुण्य विद्यायें भी उन्हें सिद्ध हो गयी थीं। वे समस्त जिनशास्त्रों के अभ्यास में प्रवीण हो गये थे, उन्हें रत्नत्रय धर्म की परम प्रीति थी और देव-गुरु-धर्म की उपासना में वे सदैव तत्पर रहते थे।

युवक बन्धुओं ! हनुमान का महान आदर्श लक्ष्य में रखकर तुम भी उनके समान बनने का प्रयत्न करना।

★ ★ ★

प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिङ्ग

अहा! मुनिदशा कैसी होती है? उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले वे मुनि, स्वरूप में गुप्त हो गये होते हैं। **प्रचुर स्वसम्वेदन ही मुनि का भावलिङ्ग है और शरीर की नग्नता-वस्त्रपात्ररहित निर्ग्रन्थदशा, वह उनका द्रव्यलिङ्ग है।** उनको अपवाद-व्रतादि का शुभराग आता है, किन्तु वस्त्रग्रहण का अथवा अध:कर्म तथा औद्देशिक आहार लेने का भाव नहीं होता।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, २१४, पृष्ठ १३०

अनन्तवीर्य केवली के दर्शन से

हनुमान को महान आनन्द

एक बार श्री अनन्तवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। देव और विद्याधरों के समूह आकाश में मंगल वादित्र बजाते-बजाते केवलज्ञान का महान उत्सव मनाने के लिये जा रहे थे। हनुमान भी आनन्द से उस उत्सव में गये और भगवान के दर्शन किये। आहाहा! दिव्य धर्मसभा के बीच निरालम्बीरूप से विराजमान अनन्त चतुष्टयवन्त उन अरिहन्तदेव को देखते ही हनुमान को कोई आश्चर्यकारी प्रसन्नता हुई। उन्होंने इस जीवन में पहली ही बार वीतरागदेव को साक्षात् निहारा था। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन के समय पहली ही बार अपूर्व आत्मदर्शन होने पर भव्य जीव के आत्मप्रदेश परम आनन्द से खिल उठते हैं; उसी प्रकार हनुमान का हृदय भी प्रभु को देखकर आनन्द से खिल उठा।

अहा! प्रभु की मुद्रा पर कैसी परम शान्ति और वीतरागता छा रही है! यह देख-देखकर उनके रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो गया। प्रभु की सर्वज्ञता में से प्रवाहित अतीन्द्रिय आनन्दरस को श्रद्धा के प्याले में भर-भरकर वे पीने लगे। परम भक्ति से उनकी हृदय वीणा झनझना उठी कि—वाह!

अत्यन्त आत्मोत्पन्न विषयातीत अनूप अनन्त है।
विच्छेद हीन वह सुख अहो, शुद्धोपयोग प्रसिद्ध को॥

अहो प्रभो! आप अनुपम अतीन्द्रिय आत्मसुख का शुद्धोपयोग के प्रसाद से अनुभव कर रहे हैं। हमारा भी यही मनोरथ है कि ऐसा उत्कृष्ट सुख अनुभव करें।

— इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करके हनुमानजी केवली प्रभु की सभा में जा बैठे। महाराजा रावण, इन्द्रजीत, कुम्भकरण, विभीषण इत्यादि भी प्रभु के केवलज्ञान उत्सव में आये हैं और भक्ति से प्रभु की वन्दना करके धर्मसभा में बैठै हैं। सभी प्रभु का उपदेश सुनने के लिये आतुर हैं। तभी वहाँ चारों ओर से आनन्द फैलाती हुई दिव्यध्वनि खिरने लगी। भव्य जीव हर्ष-विभोर हो गये। जिस प्रकार तीव्र आताप के बीच मेघवर्षा होने पर जीवों को शान्ति होती है; उसी प्रकार संसार के क्लेश से संतप्त जीवों का चित्त दिव्यध्वनि की वर्षा द्वारा अत्यन्त शान्त हुआ।

दिव्य में प्रभु ने कहा—'अहो जीवो! संसार की चारों गति के शुभ और अशुभभाव दुःखरूप हैं; आत्मा की मोक्षदशा ही परम सुखरूप हैं-ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसका साधन करो। वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही रागरहित हैं और आनन्दरूप हैं।'

भव्य जीव एकदम शान्त चित्त से भगवान का उपदेश सुन रहे हैं। भगवान की दिव्यध्वनि में आया—'आत्मा के चैतन्य सुख को अनुभव किये बिना अज्ञानी जीव पुण्य-पाप में मूर्च्छित हो रहा है और बाह्य वैभवों की तृष्णा की दाह से दुःखी हो रहा है। अहो जीवो! विषयों की लोलुपता छोड़कर अपनी आत्मशक्ति को जानो, विषयातीत चैतन्य का महान सुख तुम्हारे में ही भरा है।

आत्मा को भूलकर विषयों के आधीन वर्तता जीव महानिंद्य पापकर्म करके नरकादि गति में महान दुःख को भोगता है। अरे! अति दुर्लभ मनुष्यपना पाकर भी वह आत्महित को नहीं जानता और तीव्र हिंसा, झूठ, चोरी इत्यादि पाप करके नरक में जाता है। माँस,

मछली, अण्डा, शराब इत्यादि अभक्ष्य का सेवन करनेवाला जीव नरक में जाता है और वहाँ उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं—ऐसे दु:खों से आत्मा को छुड़ाने के लिये, हे जीवो ! तुम आत्मा को पहिचानो, श्रद्धा करो, अनुभव करो, और शुद्धोपयोग प्रगट करो। शुद्धोपयोगरूप आत्मिक धर्म का फल मोक्ष।

जीव कभी पुण्य करके देवगति में उत्पन्न हुआ, वहाँ भी अज्ञान से बाह्य वैभव में ही मूर्च्छित रहा और आत्मा के सच्चे सुख को नहीं जाना। अरे ! अभी धर्म के लिये यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिए हे जीव! अपना हित कर ले। संसार-समुद्र में खोया हुआ मनुष्यरत्न हाथ में आना बहुत दुर्लभ है।इसलिए जैन सिद्धान्त -अनुसार तत्त्वज्ञानपूर्वक मुनिधर्म अथवा श्रावकधर्म का पालन करके आत्मा का हित करो।'

—इस प्रकार अनन्तवीर्य केवली प्रभु के श्रीमुख से हनुमानजी एकचित्त से उपदेश सुन रहे हैं और परम वैराग्यरस में सराबोर हो गये हैं। राजा रावण इत्यादि भी भक्ति से उपदेश सुन रहे हैं। ऐसा सुन्दर वीतरागी धर्म का उपदेश सुनकर देव, मनुष्य, और तिर्यंच सब आनन्दित हुए। कितने ही जीव मुनि हुए, कितनों ने श्रावकधर्म अंगीकार किया, कितने ही कल्याणकारी अपूर्व सम्यक्त्व धर्म को प्राप्त हुए।

हनुमानजी, विभीषण इत्यादि ने भी उत्तम भाव से श्रावक व्रत अंगीकार किये। यद्यपि हनुमानजी को मुनि होने की भावना थी, परन्तु अपनी माता अंजना के प्रति परम स्नेह के कारण वे मुनि नहीं हो सके। अरे ! संसार में स्नेह बन्धन तो ऐसा ही है !

भगवान के उपदेश से बहुत जीवों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

खिल उठे। जिस प्रकार वर्षा होने पर बगीचा खिल उठता है; उसी प्रकार जिनवाणी की अमृत वर्षा से धर्मात्मा जीवों में आनन्द बगीचा... श्रावकधर्म तथा मुनिधर्म के पुष्पों से खिल उठा।

इस प्रसंग में एक मुनिराज ने रावण को कहा—'हे भद्र ! तू भी कुछ नियम ले। भगवान का यह समवसरण तो धर्म के रत्नद्वीप समान है; इस रत्नद्वीप में आकर तू भी कुछ नियमरूपी रत्न ले—महापुरुषों के लिये त्याग कहीं खेद का कारण नहीं है।'

यह सुनकर, जैसे रत्नद्वीप में प्रविष्ट किसी मनुष्य का मन भ्रमित होने लगे कि मैं कौन सा रत्न लूँ ? यह लूँ... या यह लूँ ? इसी प्रकार राजा रावण का चित्त भी भ्रमित होने लगा कि मैं किसका नियम लूँ ? भोगों में अत्यन्त आसक्त रावण मन में विचार करने लगा कि मुझे खान-पान तो सहज पवित्र ही है, माँसादि मलिन वस्तुओं से रहित ही मेरा आहार है परन्तु मत्त हाथी जैसा मेरा भोगासक्त मन महाव्रतों का भार उठाने में समर्थ नहीं; महाव्रतों की तो क्या बात ! श्रावक का एक भी अणुव्रत भी धारण करने की मेरी शक्ति नहीं है। अरे रे ! मैं महा शूरवीर होने पर भी व्रत, तप, धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। अहो ! ये महापुरुष धन्य हैं कि जो महाव्रत आदरते हैं; वे श्रावक भी धन्य हैं कि जो अणुव्रत पालन करते हैं। मैं महाव्रत अथवा अणुव्रत तो धारण नहीं कर सकता, तो भी एक छोटा नियम तो अवश्य धारण करूँगा—इस प्रकार विचार करके राजा रावण ने भगवान को प्रणाम करके कहा—'हे देव ! मैं ऐसा नियम लेता हूँ कि जो पर नारी मुझे नहीं चाहती हो, उसे मैं नहीं भोगूँगा। परस्त्री चाहे जैसी रूपवन्ती हो, तथापि बलात्कार से उसका सेवन नहीं करूँगा'—इस प्रकार अनन्तवीर्य केवली के समक्ष रावण ने प्रतिज्ञा की। उसके मन में

ऐसा था कि जगत में ऐसी तो कौन स्त्री है कि जो मुझे देखकर मोहित न हो जाये ? अथवा ऐसी वह कौन-सी परस्त्री है कि विवेकी पुरुष के मन को डिगा सके ?

रावण के भाई कुम्भकरण ने भी इस प्रसंग पर यह प्रतिज्ञा अंगीकार की कि प्रतिदिन प्रात:काल उठकर जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक-पूजन करूँगा तथा आहार के समय मुनिराज पधारें तो उन्हें आहारदान करके पश्चात् मैं भोजन ग्रहण करूँगा। मुनि के आहार की बेला से पूर्व मैं भोजन नहीं करूँगा—इस प्रकार धर्मात्मा कुम्भकरण जो कि चरमशरीरी है और वढ़वाणी चूलगिरि सिद्धक्षेत्र से मोक्ष प्राप्त करनेवाला है—उसने यह नियम लिया। दूसरे भी अनेक जीवों ने अपनी-अपनी शक्ति का विचार करके अनेक प्रकार के व्रत-नियम अंगीकार किये।

इस प्रकार केवली प्रभु की सभा में आनन्द से धर्म श्रवण करके और व्रत-नियम अंगीकार करके सब अपने-अपने स्थान की ओर गमन कर गये। आज तो हनुमानजी के हर्ष का पार नहीं था। आज तो उन्होंने साक्षात् भगवान को देखा है, फिर हर्ष की क्या बात! घर आते ही अपने महान हर्ष की बात करते हुए उन्होंने अपनी माता से कहा—'अहो माँ! आज तो मैंने अरिहन्त परमात्मा को साक्षात् देखा! अहा! कैसा अद्‌भुत उनका रूप! कैसी उनकी शान्त मुद्रा और कैसा आनन्दकारी उनका उपदेश!! माँ! आज तो मेरा जीवन धन्य बन गया!!'

'वाह बेटा! अरिहन्तदेव के साक्षात् दर्शन होना, वह वास्तव में धन्य भाग्य है! और जो उनके स्वरूप को पहिचानता है, उसे तो भेदज्ञान हो जाता है।' अंजना ने कहा।

हनुमान कहते हैं—'वाह माता! आपकी बात सत्य है। अरिहन्त परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं, उनके द्रव्य में-गुण में-पर्याय में सर्वज्ञ चेतनभाव ही है; राग का कोई अंश उस आत्मा में नहीं है। इसलिए उन्हें पहिचानने से आत्मा का रागरहित सर्वज्ञस्वभाव पहिचानने में आता है और उसकी पहिचान, वही सम्यग्दर्शन है। भगवान भी ऐसा ही कहते थे कि—

जो जानता अरहन्त को चेतनमयी शुद्धभाव से,
वह जानता निज आत्म को समकित लहे आनन्द से॥

माता! अनुभवगम्य हुई यह बात श्री प्रभु की वाणी में सुनते हुए महान प्रसन्नता हुई थी।'

माता अंजना भी अपने प्रिय पुत्र का हर्ष देखकर आनन्दित हुई और कहा—'वाह बेटा! सर्वज्ञ भगवान के प्रति तेरा ऐसा प्रेम देखकर मुझे आनन्द होता है। भगवान की वाणी में तूने दूसरा क्या सुना—वह तो कह!'

हनुमान ने अत्यन्त उल्लास से कहा—'अहो माता! आत्मा का अद्भुत आनन्दस्वरूप भगवान बतलाते थे। वीतरागरस से भरपूर चैतन्यतत्त्व की कोई गम्भीर महिमा भगवान बतलाते थे। उसे सुनकर भव्य जीव शान्तरस के समुद्र में सराबोर हो जाते थे। माता! वहाँ तो कितने ही मुनिवर विद्यमान थे, वे आत्मा के आनन्द में झूलते थे। अहा! उस आनन्द में झूलते मुनिवरों को देखकर मुझे भी उनके साथ रहने का मन हुआ था परन्तु.....' *इतना कहकर हनुमान चुप हो गये।*

अंजना ने पूछा—'क्यों बेटा हनुमान! तुम बोलते-बोलते रुक क्यों गये?'

—'क्या कहूँ माँ! मुझे मुनिदशा की बहुत भावना जागृत हुई, परन्तु हे माता! आपके स्नेहबन्धन को मैं तोड़ नहीं सका। आपके प्रति परमप्रीति के कारण मैं मुनि नहीं हो सका। माता! मैं सम्पूर्ण संसार के मोह को क्षण में परित्याग करने में समर्थ हूँ परन्तु एक आपके प्रति का मोह नहीं छूटता, इसलिए महाव्रत के बदले मैंने मात्र अणुव्रत धारण किये हैं।'

'अहा पुत्र! तू अणुव्रतधारी श्रावक हुआ, यह महा आनन्द की बात है। तेरी उत्तम भावनायें देखकर मुझे हर्ष हो रहा है। मैं ऐसे महान धर्मात्मा और चरमशरीरी मोक्षगामी पुत्र की माता हूँ, इसका मुझे गौरव है। अरे! वन में जन्मा हुआ मेरा पुत्र अन्ततः तो वनवासी ही होगा न! और आत्मा की परमात्मदशा को साधेगा न!'

माता-पुत्र बहुत बार इस प्रकार आनन्दपूर्वक धर्म चर्चा करते थे। हनुमान के पिता पवनंजय भी उसमें रस लेते थे। ऐसे धर्मात्मा जीवों को अपने आँगन में देखकर अंजना के मामा राजा प्रतिसूर्य भी प्रसन्न होते थे कि वाह! ऐसे धर्मी जीवों की सेवा का लाभ मुझे अनायास ही मिला है, यह मेरा महाभाग्य है।

★ ★ ★

रण शूर हनुमान...

रावण की सहायता को

राजा प्रतिसूर्य का राजदरबार लगा हुआ है। श्री पवनकुमार, हनुमान इत्यादि भी राज्यसभा में शोभित हो रहे हैं। तेजस्वी हनुमान को देखकर सभी मुग्ध हो रहे हैं। इतने में एक राजदूत ने राज्यसभा में प्रवेश किया और भेंट रखकर राजा प्रतिसूर्य से कहने लगा—'हे महाराज! मैं लंकाधिपति रावण महाराज का सन्देश लेकर आया हूँ! पूर्व में जिस राजा वरुण को पवनकुमार ने जीत लिया था, वह राजा वरुण अभी फिर से महाराज रावण की आज्ञा का लोप करके उनसे विरुद्ध प्रवर्तन कर रहा है, इसलिए उसके साथ युद्ध में सहायता करने के लिये आपको और पवनकुमार को महाराजा रावण ने बुलाया है।'

रावण की आज्ञा शिरोधार्य करके राजा प्रतिसूर्य तथा पवनकुमार युद्ध में जाने के लिये तैयारी करने लगे और हनुरुह द्वीप का राज्यभार हनुमान को सौंपने का विचार कर उनके राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे।

यह देखकर हनुमानजी ने कहा—'पिताजी! आप दोनों पूज्य हैं, मेरे होने पर भी आपका युद्ध में जाना उचित नहीं है। मैं हूँ युद्ध में जाऊँगा और राजा वरुण को पराजित करूँगा।'

'बेटा हनुमान! तू शूरवीर है, यह सत्य है परन्तु अभी बालक है। अभी तेरी उम्र छोटी है। तुमने कभी रणभूमि देखी नहीं है और शत्रु राजा महाबलवान है, उसके पास विशाल सेना है और उसका किला बहुत मजबूत है। इसलिए युद्ध में जाने का आग्रह छोड़ दे। हम ही युद्ध में जायेंगे।'

पिता की बात सुनकर हनुमान ने कहा—'हे पिताश्री! भले ही मैं छोटा हूँ परन्तु शूरवीर हूँ। पहले भले ही रणक्षेत्र नहीं देखा, उससे क्या? वैसे तो हे पिताजी! चारगति में अनादि काल से भटकते हुए जीव ने कभी मोक्षगति नहीं देखी, तथापि उस अभूतपूर्व मोक्षपद को मुमुक्षु जीव आत्मा के उद्यम द्वारा क्या नहीं साध लेते हैं? पहले कभी नहीं देखी हुई मोक्षपदवी को भी वे पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर ही लेते हैं तथा पहले कभी नहीं देखे हुए आत्मतत्त्व को अपूर्व सम्यग्ज्ञान द्वारा भव्य जीव देख ही लेते हैं, तो फिर पहले नहीं देखे हुए रणक्षेत्र में जाकर शत्रु को जीत लेना कौन सी बड़ी बात है? इसलिए हे तात्श्री! मुझे ही युद्ध में जाने दीजिए। मैं राजा वरुण को जीत लूँगा। सिंह का बच्चा बड़े हाथी के सामने जाने से कहीं भयभीत नहीं होता है, इसी प्रकार मैं भी निर्भयरूप से वरुण राजा को अवश्य पराजित करूँगा।'

हनुमान की वीरतायुक्त वाणी सुनकर सभी प्रसन्न हुए। वाह! देखो, मोक्षगामी जीव के भनकार! युद्ध की बात में भी उन्होंने मोक्ष का दृष्टान्त प्रस्तुत किया। यद्यपि अनादि अज्ञानदशा में जीव ने कभी आत्मा को जाना नहीं था तथा सिद्धपद का स्वाद चखा नहीं था परन्तु जहाँ वह मुमुक्षु हुआ और मोक्ष को साधने के लिये तैयार हुआ, वहाँ आत्मा के स्वभाव में से ही सुज्ञान प्रगट करता हुआ, चैतन्य की स्वाभाविक वीरता द्वारा आत्मा को जान लेता है और अनादि के मोह को पराजित कर सिद्धपद को साध लेता है। सत्य ही कहा है कि 'रण चढ़ा रजपूत छिपे नहीं।'

इस प्रकार हनुमान का अत्यधिक आग्रह देखकर उन्हें कोई रोक नहीं सके और अन्ततः युद्ध में जाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

प्रसन्नचित्त से विदा लेकर सर्व प्रथम हनुमानजी जिनमन्दिर गये, वहाँ अत्यन्त भक्ति से शान्तचित्तपूर्वक मांगलिक द्रव्यों द्वारा अरिहन्तदेव की पूजा की, सिद्धों का ध्यान किया और भावना भायी कि अहो भगवन्तों! आपके समान मैं भी मोह शत्रु को जीतकर कब आनन्दमय मोक्षपद की साधना करूँगा!

इस प्रकार पंच परमेष्ठी भगवन्तों का पूजन करने के पश्चात् हनुमान ने माता के समीप जाकर विदा माँगते हुए कहा—'हे माँ! मैं युद्ध में शत्रु को जीतने के लिये जा रहा हूँ। आप मुझे आशीर्वाद प्रदान करें।'

माता अंजना तो आश्चर्यचकित रह गयी। ऐसे शूरवीर पुत्र को देखकर उसके हृदय में स्नेह उमड़ पड़ा... पुत्र को युद्ध के लिये विदाई देते हुए उनकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े परन्तु उन्हें पुत्र की शूरवीरता का विश्वास था। इसलिए आशीर्वादपूर्वक विदाई देते हुए कहा—'बेटा! जा... और जैसे वीतरागी मुनिराज शुद्धोपयोग द्वारा मोहशत्रु को जीत लेते हैं, उसी प्रकार तू भी शत्रु को जीतकर अतिशीघ्र ही वापिस आना।'

माता के चरणों में नमस्कार करके हनुमान ने विदा ली और सेना सहित लंका नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मंगल सूचक अनेक शुभ शकुन हुए।

हनुमानजी रावण के पास आ पहुँचे; दिव्यरूपधारी हनुमान को देखते ही राक्षसवंशी विद्या राजागण आश्चर्यचकित होकर परस्पर में वार्तालाप करने लगे कि यह हनुमानजी महान भव्योत्तम हैं। इन्होंने बाल्यावस्था में पर्वत की शिला का चूरा कर डाला था, यह वज्र-अंगी है।

महाराज रावण ने भी प्रसन्नता से उनका सम्मान किया और अत्यन्त स्नेहपूर्वक हृदय से लगाकर अपने समीप ही बैठा लिया। उनका रूप देखकर अत्यन्त हर्षित होते हुए कहा—'पहले इनके पिताजी पवनकुमार ने हमारी सहायता की थी और अब ऐसे गुणवन्त हनुमान को भेजकर उन्होंने हमारे प्रति अतिशय स्नेह दर्शाया है। इनके समान बलवान योद्धा दूसरा कोई नहीं है; इसलिए अब रण-संग्राम में राजा वरुण को अवश्य जीत लेंगे। (यद्यपि रावण के पास दैवीय आयुध होने से उनके द्वारा वह राजा वरुण को सहजता से जीत सकता था परन्तु उसे ऐसी प्रतिज्ञा थी कि राजा वरुण को दैवीय शस्त्रों के उपयोग किये बिना ही जीतना है)।

अब, पुनः महाराजा रावण ने वरुण राजा के साथ संग्राम शुरु किया। वरुण राजा की पुण्डरिकनगरी लवणसमुद्र के बीच में थी। हनुमान ने समुद्र उल्लंघकर उसमें प्रवेश किया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध शुरु हुआ। वरुण के पुत्रों ने रावण को चारों ओर से घेर लिया। एक बार विद्याबल से कैलाशपर्वत को भी कम्पित कर देनेवाला राजा रावण शत्रुओं से घिर गया। यह देखकर हनुमान शीघ्र ही वहाँ दौड़ आये और जुनूनपूर्वक उन राजपुत्रों पर टूट पड़े। जिस प्रकार पवन के झपट्टे से पत्ते कम्पित हो उठते हैं; उसी प्रकार पवनपुत्र के हमले से शत्रु कम्पित हो उठे; जिस प्रकार जिनमार्ग के अनेकान्त के सन्मुख एकान्तरूप मिथ्यामत टिक नहीं सकते, उसी प्रकार हनुमान के समक्ष वरुण की सेना नहीं टिक सकी। हनुमान ने विद्या के बल से वरुण के समस्त पुत्रों को पकड़कर बाँध लिया। दूसरी ओर रावण ने भी वरुण राजा को पकड़ लिया।

अब इस प्रकार युद्ध में रावण की विजय होने से उसके सैनिकों

ने वरुण राजा की पुण्डरीकनगरी में प्रवेश किया और सैनिकगण नगरी को लूट लेने का विचार करने लगे परन्तु नीतिवान राजा रावण ने उन्हें रोकते हुए कहा—'हे सैनिकों! प्रजा को लूटना राजाओं का धर्म नहीं है। अपना वैर तो राजा के साथ था, प्रजा के साथ नहीं; प्रजा का क्या अपराध है? प्रजा को लूटना महा अन्याय है। ऐसा दुराचार अपने को शोभा नहीं देता, इसलिए प्रजा का रक्षण करके उसे निर्भय बनाओ तथा वरुण राजा को छोड़कर उसका राज्य वापस उसे सौंप दो'—रावण का ऐसा उदार व्यवहार देखकर सब उसकी प्रशंसा करने लगे।

युद्ध में सही समय पर आकर हनुमानजी ने रावण की रक्षा की, इस कारण रावण उन पर बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी भानेज अर्थात् खरदूषण की पुत्री अनंगकुसुमा तथा कर्णकुण्डलपुर नगरी का राज्य उन्हें प्रदान किया।

(जिस प्रकार भरत चक्रवर्ती के भाई बाहुबली पहले कामदेव थे, वैसे बजरंग बली हनुमान भी आठवें कामदेव थे। उनका रूप अजोड़ था। वे पवनकुमार नामक विद्याधर राजा तथा अंजनासती के पुत्र थे। उस राजपुत्र की ध्वजा में कपि / बन्दर का निशान था। जिस प्रकार बाहुबली कामदेव का अद्भुतरूप, अनेक रानियाँ, पुत्र-पुत्रियाँ, राजपरिवार इत्यादि विशिष्ट पुण्य वैभव था, उसी प्रकार हनुमान कामदेव को भी वैसा विशिष्ट पुण्य वैभव था परन्तु वे बाहुबली तथा हनुमान, कामदेव होने पर भी निष्काम आत्मा को जाननेवाले थे, चरमशरीरी थे, ब्रह्मस्वरूप के ज्ञानपूर्वक अन्त में राजपाट-रानियाँ इत्यादि सबका परित्याग कर परमब्रह्म में लीनता द्वारा मोक्षपद को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार उनका ब्रह्ममय जीवन होने

से उन्हें अध्यात्मदृष्टि से ब्रह्मचारी भी कहा जाता है।)

पाठकगण! हनुमान की पूर्व कथा 'दो सखियाँ' पुस्तक में आपने पढ़ी होगी और आपको स्मरण भी होगी कि वन में जन्म लेने के पश्चात् जब प्रतिसूर्य राजा के विमान में बैठकर सभी जा रहे थे और हनुमानजी विमान में से नीचे एक शिला पर गिर गये थे, तब हनुमानजी को तो कुछ चोट नहीं लगी परन्तु उनके वज्र शरीर के प्रहार से शिला टूट गयी और इसीलिए हनुमान का नाम शैलेषकुमार प्रसिद्ध हुआ। वरुण के साथ युद्ध में से वापस लौटते समय मार्ग में वह पर्वत आया और वह वन तथा गुफा भी आयी, जिसमें उनकी माता अंजना रही थी। हनुमानजी उसे देखने के लिये नीचे उतरे और माता के वनवास समय के निवासस्थान को देखकर उन्हें अत्यन्त वैराग्य जागृत हुआ। अहा! यहाँ इस वन में और इस गुफा में मेरी माता रहती थी। इस गुफा में विराजमान मुनिराज ने मेरी माता को धर्मोपदेश दिया था और मेरे पूर्व भव भी बतलाये थे। अहा! यहाँ मुनिसुव्रतभगवान की प्रतिमा विराजमान है। मेरी माता उनके दर्शन-पूजन करती थीं और समस्त दुःखों को भूल जाती थीं। यहाँ इस गुफा में ही मेरा जन्म हुआ है—ऐसा विचार कर, अपने जन्मधाम में (गुफा में) बैठकर हनुमानजी चैतन्य का ध्यान करने लगे। अहा! एक क्षण में युद्ध! और दूसरे क्षण में चैतन्य की निर्विकल्प शान्ति का ध्यान!! वाह! साधक धर्मात्माओं की परिणति कैसी विचित्र है!! कैसी अद्‌भुततायुक्त है—उनकी चैतन्यभावना, जो कि अन्य भावों के समय भी उनसे न्यारी ही वर्तती है।

वाह साधक! धन्य आपका जीवन! आपका जीवन अन्य जीवों को भी भेदज्ञान और आराधना का ही बोध प्रदान कर रहा

है। अहो जीवो! हनुमान जैसे धर्मसाधक जीवों के जीवन में उदयभाव के अनेकविध प्रसंगों को देखकर भी उनकी उदयातीत चैतन्यदशा को भूलना नहीं। जो उदयभावों से भिन्न है और उदयभाव की अपेक्षा जो बलवान है-ऐसे सम्यक्त्वादि चैतन्यभावों द्वारा शोभित साधक जीवों के जीवन को पहिचानकर उनका सम्मान करना। मात्र उदयभावों को देखने में रुक मत जाना।

★ ★ ★

किष्कन्धपुर नगरी का विद्याधर राजा सुग्रीव बहुत ही पराक्रमी था, उसकी पुत्री पद्मरागा हनुमान पर मोहित हो गयी। हनुमान का चित्त भी उसका चित्रपट देखकर उसमें आसक्त हुआ; इसलिए दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् हनुमान हनुरुहद्वीप पहुँचे। ऐसे शूरवीर प्रतापवन्त और धर्मात्मा पुत्र को देखकर अंजना और पवन इत्यादि सब अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और धूमधाम से विजयोत्सव मनाया गया।

लंका नगरी के महाराजा रावण, हजारों राजा जिनकी सेवा करते हैं, जिन्हें अठारह हजार रानियाँ हैं, भरतक्षेत्र के विजयार्द्धपर्वत की दक्षिण दिशा के तीन खण्ड के जो अधिपति हैं, जिनके यहाँ दैवीय सुदर्शनचक्र प्रगट हुआ है, सर्व राजाओं ने मिलकर अर्धचक्रवर्तीरूप से जिनका राज्याभिषेक किया है, वह राजा रावण, मुनिसुव्रत तीर्थंकर के शासनकाल में आठवाँ प्रतिवासुदेव हुआ। वह राक्षसवंशी विद्याधर राजाओं के कुल का तिलक था। वह माँसाहारी नहीं था, अपितु शुद्ध भोजन करनेवाला जिनभक्त था; उसकी लंकानगरी की शोभा अद्भुत थी और वहाँ के राजमन्दिर में

शान्तिनाथ भगवान का एक अति मनोहर जिनालय था; वहाँ जाकर रावण जिनभक्ति करता था, साथ ही विद्या भी साधता था। लंका प्रवेश के पश्चात् रामचन्द्रजी ने भी उस जिनमन्दिर में शान्तिनाथ भगवान की अद्भुत भक्ति की थी। हनुमान भी वस्तुतः बन्दर नहीं थे परन्तु कामदेव और चरमशरीरी महात्मा थे।

शास्त्रकार कहते हैं कि अहो, भव्य जीवों! तुम जिनशास्त्रानुसार भगवान रामचन्द्र, भगवान हनुमान, इन्द्रजीत, कुम्भकरण इत्यादि के वीतरागस्वरूप को पहिचानो, जिससे उन मोक्षगामी महान सत्पुरुषों के अवर्णवाद का दोष न लगे और रत्नत्रयमार्ग का उत्साह जागृत हो। जिनशास्त्र में तो रत्न का भण्डार है, उन जिनशास्त्रानुसार वस्तु के सत्यस्वरूप को जानने से मिथ्यात्वादि पाप धुल जाते हैं और अपूर्व हितकारी भाव प्रगट होते हैं।

(बन्धुओं! अपनी इस कथा का सम्बन्ध हनुमानजी के जीवन चरित्र के साथ है; हनुमानजी ने राजा रावण को युद्ध में सहायता की थी और वापिस हनुरुह द्वीप आये। अब बाद के प्रकरण में हनुमान, श्री रामचन्द्र को सीता की शोध में मदद करेंगे, इतना ही नहीं; रावण के सन्मुख युद्ध में और लक्ष्मण को बचाने में भी अत्यन्त मूल्यवान मदद करेंगे, किन्तु तत्पूर्व बीच में हमें भगवान रामचन्द्र और सीताजी सम्बन्धी थोड़ा-सा इतिहास जान लेना आवश्यक है। अभी हनुमान तो अपनी अंजना माता के पास जाकर वरुण राजा के साथ युद्ध की तथा वापस गमन करते समय वन में अपना जन्मधाम देखा था, उसकी बात करने में तल्लीन हैं। वे माता-पुत्र घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं, तब तक हम श्रीराम और सीताजी के पास जाकर आते हैं।)

दशरथ वैराग्य : राम-लक्ष्मण विदेश गमन; वैरागी भरत

अपने इस भरतक्षेत्र की अयोध्यानगरी में इक्ष्वाकु वंश में भगवान ऋषभदेव से लेकर मुनिसुव्रत तीर्थंकर तक के काल में असंख्य राजा मोक्षगामी हुए हैं, उनमें अनुक्रम से रघु राजा हुए हैं। उन रघु राजा के पौत्र अयोध्या के महाराजा दशरथ सम्यग्दर्शन से सुशोभित थे। उन्होंने भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अद्भुत जिनालयों का जीर्णोद्धार कराकर पुनः नवीन जैसे बनाया दिये थे। उन दशरथ राजा के कौशल्या, सुमित्रा, सुप्रभा और कैकेयी नामक चार रानियाँ थीं। उनमें कैकेयी ने स्वयंवर के समय राजाओं के साथ युद्ध में राजा दशरथ को सहायता की थी, इसलिए प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने उन्हें एक वरदान माँगने को कहा था, जो उन्होंने अवशेष रखा था।

(पाठकगण! यह महारानी कैकेयी, जिनशासन की वेत्ता, सम्यग्दर्शन की धारक और व्रतों का पालन करनेवाली थी। शास्त्रविद्या और शस्त्रविद्या दोनों में वे निपुण थीं। वे दुष्ट या दुर्गुणी नहीं थीं किन्तु सज्जन-धर्मात्मा श्राविका थीं। वरदान अवशेष रखने में उसका कोई दुष्ट हेतु नहीं था किन्तु विवेक था। उन्होंने विचार किया कि बिना आवश्यकता क्या माँगना! अरे रे! लोग धर्मात्मा को पहिचान नहीं सकते, इसलिए अपने राग-द्वेष के अनुसार धर्मात्मा में भी मिथ्या दोषारोपण करके विपरीत स्वरूप से देखते हैं। धर्मात्मा के सद्गुणों और महान चारित्र को पहिचाने, तब तो जीव का कल्याण हो जाए। जैनपुराण धर्मात्माओं के गुणों की सच्ची पहिचान कराते हैं और कैसे-कैसे गम्भीर प्रसंगों में भी धर्मात्माओं ने अपने उत्तम गुणों की आराधना बनाये रखी है—यह बतलाकर जीव को आराधना का उत्साह जागृत करते हैं। इसलिए जैनपुराणों का

वाँचन-श्रवण मुमुक्षु जीवों के लिये उपयोगी है।)

राजा दशरथ की चार रानियों द्वारा अनुक्रम से राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चार पुत्र हुए। राम का मूल नाम 'पद्म' था, इसलिए उनकी कथा पद्मपुराण अथवा पद्मचरित्र कहलाती है।

★ ★ ★

अष्टाह्निका महापर्व आया... और धर्मात्मा राजा दशरथ ने आठ दिन के उपवासपूर्वक जिनेन्द्रदेव की महान पूजा की। सम्पूर्ण अयोध्यानगरी वीतरागी पूजन के महान हर्ष से खिल उठी। इस प्रसंग पर राजा को वृद्धावस्था देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। इतने में सरयू नदी के किनारे कितने ही मुनिवरों का संघ आ पहुँचा। पर्वत पर, गुफा में, वन में, नदी के किनारे मुनिवर ध्यान-स्वाध्याय में रत थे। अहो, धर्मकाल! कितने ही मुनिवर विशेष लब्धिवन्त और अवधि-मनःपर्ययज्ञानी थे। राजा दशरथ भक्तिपूर्वक उन मुनिवरों के दर्शन करने के लिये वन-जंगल में गये और उनका उपदेश श्रवण किया।

दूसरी ओर विद्याधर के पुत्ररूप से रहा हुआ भामण्डल, जो कि वास्तव में सीता का सहोदर भाई है, परन्तु उसे इस बात का परिज्ञान नहीं है कि सीता मेरी बहिन है, वह सीताकुमारी का अद्भुत रूप देखकर उस पर मोहित हुआ और सीता का हरण करने के लिये विशाल सेनासहित अयोध्या की ओर गमन किया किन्तु मार्ग में ही अपने पूर्व भव की नगरी देखने से उसे जातिस्मरणज्ञान हुआ तथा सीता और स्वयं एक ही माता के गर्भ से जन्मे हुए भाई-बहिन ही हैं, यह उसे विदित हुआ। इस कारण उसे बहुत पश्चाताप हुआ कि अरे रे! सीता तो मेरी सगी बहिन है, मैंने अज्ञान से दुष्ट परिणाम किये

हैं। सीताजी को भी जब यह ज्ञात हुआ कि भामण्डल मेरा भाई है, तब वे भी बहुत प्रसन्न हुई। भामण्डल के पालक पिता विद्याधर राजा ने जब भामण्डल के जातिस्मरण की बात सुनी, तब वे वैराग्य को प्राप्त हुए और भामण्डल को राज्यभार सौंपकर उन्होंने भगवती जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

महाराजा दशरथ भी मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्वभवों का वर्णन सुनकर संसार से विरक्त हुए और राम को राज्य सौंपकर जिनदीक्षा के लिये तैयार हुए। अन्तःपुर में यह बात सुनते ही सर्वत्र शोक छा गया परन्तु वैरागी पुत्र भरत तो यह बात सुनकर प्रसन्न हुआ और उसने विचार किया कि पिताजी! आपको तो राज्य का भार है, इसलिए सबको पूछना पड़ता है और राज्य का प्रबन्ध भी करना पड़ता है किन्तु मुझे न तो किसी को पूछना है और न कुछ करना है। इसलिए मैं भी पिताजी के साथ ही जिनदीक्षा अंगीकार कर संयम धारण करूँगा।

कैकेयी माता विचक्षण थी, वह अपने पुत्र भरत की वैराग्य चेष्टा समझ गयी। अरे! एक साथ पिता और पुत्र दोनों का वियोग किस प्रकार सहन होगा! पुत्र के तीव्र मोहवश उन्होंने विचार किया कि किसी भी उपाय से भरत को दीक्षा लेने से रोकना चाहिए—इस समय उन्हें पूर्व के अवशेष रखे हुए वरदान का स्मरण आया। उन्होंने अपने पति राजा दशरथ के पास जाकर भरत को राज्यभार सौंपने का वरदान माँगा। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक वह वरदान दे दिया और कहा—'हे देवी! तूने आज मुझे ऋण मुक्त कर दिया।'

दशरथ और कैकेयी परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे, तभी वहाँ वैरागी भरत राजमहल से बाहर निकलकर वन की ओर गमन करने

लगा। चारों ओर हाहाकार होने लगा, जिसे सुनकर तुरन्त पिता ने उसे रोककर राज्य सम्हालने की आज्ञा प्रदान की, किन्तु भरत इस बात के लिये किसी भी प्रकार से सहमत नहीं हुए। अन्त में राम ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें प्रेम से समझाया और कहा—'हे बन्धु! पिता के वचन का भंग होने से कुल की अपकीर्ति होती है और माता कैकेयी भी तुम्हारे वियोग से महान दुःखी होगी। इसलिए पुत्र का कर्तव्य है कि माता-पिता को दुःख न होने दे। हे भाई! अभी तुम्हारी उम्र छोटी है, थोड़े समय तुम राज्य सम्हालो, फिर हम साथ में ही दीक्षा लेंगे।'

उन्होंने यह भी कहा—'बड़े भाई की उपस्थिति होने पर भी, महाराज दशरथ ने छोटे भाई को राज्य सौंप दिया—ऐसा भी लोग न बोलें, तदर्थ मैं तो दूर-दूर वन में या दक्षिण के किसी दूर क्षेत्र में जाकर रहूँगा, तुम निश्चिन्तरूप से राज्य सम्हालो'—ऐसा कहकर, माता-पिता को वन्दन करके श्री रामचन्द्र ने विदेश गमन किया। उनके साथ सीताजी और लक्ष्मणजी ने भी वन की ओर गमन किया। यह दारुण दृश्य देखकर महाराजा दशरथ मूर्च्छित हो गये। नगरजनों ने और चारों माताओं ने रामचन्द्रजी को वन में न जाने के लिये बहुत मनाया किन्तु वे इसके लिए सहमत नहीं हुए।

श्री राम का वन-गमन देखकर प्रजाजन तथा अनेक राजा शोकमग्न हुए, बहुत से राजा संसार की ऐसी स्थिति देखकर वैराग्य को प्राप्त हुए और संसार का परित्याग कर मुनिदीक्षा अंगीकार की। अयोध्यानगरी में भरत को और प्रजाजनों को कहीं चैन नहीं पड़ता था। महाराजा दशरथ भी कुछ दिनों पश्चात् दीक्षित होकर मुनि हुए और एकल विहारीरूप से विचरण करते हुए केवलज्ञान को प्राप्त

कर मोक्षपुरी को प्राप्त हुए।

★ ★ ★

अहा! मुनि होने की भावनावाला भरत परम विरक्त चित्त से अयोध्या का राज्य सम्हाल रहा है... मानो दूसरा भरत चक्रवर्ती पका हो! अन्तर से उदास, तथापि प्रजा का पुत्रवत् पालन कर रहा है। पाठकगण! कल्पना तो करो कि जो राजकुमार निश्चिन्तरूप से पिता से पहले ही संसार का परित्याग कर मुनि होने के लिये महल से बाहर निकल गया था, उसे फिर से राज्य सम्हालना पड़ा— उसकी अन्तरदशा कैसी होगी! एक ओर ज्ञानचेतना—राज्य से और राग से भी सर्वथा अलिप्त; तथा दूसरी ओर महान राज्य का भार! कैसी विचित्र दशा है ज्ञानी की! एक ओर मोक्ष की ओर की चेतना परिणमित हो रही है, दूसरी ओर संसार का रागभाव भी काम कर रहा है। वाह रे वाह! ज्ञानियों की आश्चर्यकारी दशा! भेदज्ञान के बिना वह समझ में नहीं आ सकती।

इस प्रकार राजा दशरथ वैरागी हुए, राम-लक्ष्मण विदेश गये, भरत वैरागी हुए... देखो तो सही, अयोध्या की दशा! और महापुरुषों के जीवन की विचित्रता! चाहै जैसी विचित्रता के बीच भी धर्मात्मा को अपना चैतन्यतत्त्व कभी विस्मृत नहीं होता, यही उनके अन्तरंग जीवन की विशिष्टता है... इसमें ही आराधना का रहस्य है।

★ ★ ★

यहाँ सदा ऐसी आराधना में वर्त रहे, ऐसे महापुरुष श्री हनुमानजी की यह कथा चल रही है। वे हनुमान राम के परममित्र हैं, दोनों चरमशरीरी मित्र! वाह! इन हनुमान और राम का मिलाप किस प्रकार से कैसे प्रसंग में हुआ? वह प्रसंग आप आगे पढ़ेंगे।

राम का जीवन देखो या हनुमान का जीवन देखो; विभीषण का जीवन देखो या सीताजी का जीवन देखो; अंजना का जीवन देखो या चन्दना का देखो—सभी के जीवन में कैसी-कैसी विचित्रता है! इस विचित्रता के मध्य अलिप्त रहे हुए चैतन्यभाव को शोध लेना—पहिचान लेना, वह सर्व भव्य पुरुषों का तात्पर्य है और जो ऐसी पहिचान करता है, उसने ही महापुरुषों की जीवनगाथा सुनी है।

पाठकगण! चलो, हम भी श्रीराम के साथ जाकर यह देखते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। राम-लक्ष्मण-सीता को कोई दु:ख नहीं है, वे आनन्दपूर्वक वनविहार करते हैं, जहाँ जाते हैं, वहाँ पुण्य प्रताप से उनके अद्भुतरूप को देखकर सब सम्मान करते हैं। राम-लक्ष्मण साथ में होने से, चाहे जैसे भयंकर वन में भी कोमल अंगी सीताजी को कोई भय नहीं होता है। उन्हें नये-नये तीर्थों के दर्शन से आनन्द होता है, वे वीतरागी मुनियों का दर्शन होने पर भक्ति करती हैं और धर्मोपदेश सुनती हैं। सभी परस्पर धर्मचर्चा करते हैं। अहा! अयोध्या के राजपुत्र वनविहारी मुनियों की भाँति विचरण कर रहे हैं!

★ ★ ★

मालवदेश में दशांगव नगर के राजा व्रजकर्ण को ऐसी प्रतिज्ञा थी कि मैं जिनदेव-जिनमुनि और जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा। उज्जैनपति सिंहोदर राजा उसे नमन कराने के लिये उस पर घेरा डालकर नगरी को उज्जड़ कर रहा था। तब जिनधर्म के परम वात्सल्य से राम-लक्ष्मण ने सिंहोदर राजा को जीतकर वज्रकर्ण की रक्षा की... और बहुत साधर्मी वात्सल्य दर्शाया; तत्पश्चात् उन दोनों राजाओं को परस्पर एक-

दूसरे के मित्र बना दिया।

इस प्रकार राम-लक्ष्मण विदेशयात्रा करते-करते बीच में अनेक दुष्ट राजाओं का निग्रह करके सज्जनों पर उपकार करते हैं; मुनिवरों अथवा धर्मात्माओं के उपसर्गों को दूर करते हैं। अद्भुत पुण्य-प्रताप से उन्हें सर्वत्र सफलता प्राप्त होती है। महापुरुष महल में हो या वन-जंगल में, परन्तु उनका पुण्य-प्रताप छिपा नहीं रहता।

इस प्रकार विचरण करते हुए वे वंशस्थल नगर के समीप आ पहुँचे और उसके समीप के वंशधर पर्वत पर विराजमान देशभूषण-कुलभूषण मुनिराज पर देवकृत भयंकर उपसर्ग को दूर किया; उन मुनिवरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। मुनिवरों को केवलज्ञान होने पर राम-लक्ष्मण ने ऐसी अद्भुत भक्ति की, जिसे देखकर सीताजी भी आनन्द से नाच उठीं। ऐसी अद्भुत जिनमहिमा देखकर हजारों जीव आश्चर्यचकित हुए और बहुत से जीवों ने सम्यक्त्व को प्राप्त किया।

★ ★ ★

मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा

भरत चक्रवर्ती जैसे धर्मात्मा भी भोजन के समय रास्ते पर आकर किन्हीं मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा करते थे और मुनिराज के पधारने पर परमभक्ति से आहारदान देते थे। **अहा! मानों आँगन में कल्पवृक्ष फला हो, उससे भी विशेष आनन्द धर्मात्मा को मोक्षमार्गसाधक मुनिराज को अपने आँगन में देखकर होता है।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, गुरुदेवश्री के वचनामृत, २०, पृष्ठ १२

गिद्ध पक्षी जटायु को धर्म प्राप्ति

देशभूषण–कुलभूषण का उपसर्ग दूर करके और उनकी दिव्यभक्ति करके राम–लक्ष्मण–सीता नर्मदा के किनारे आये और गुप्ति–सुगुप्ति नामक गगनविहारी मुनियों को भक्ति से आहारदान प्रदान किया। उस समय अतिशयवन्त मुनिवरों को देखकर एक गिद्ध पक्षी को जातिस्मरणज्ञान हुआ और वह वृक्ष से नीचे मुनिवर के चरणों में–गन्धोदक में आ गिरा।

ऋद्धिधारी मुनिराज के गन्धोदक के प्रभाव से उस पक्षी का शरीर रत्न समान अत्यन्त तेजस्वी बन गया; आश्चर्य पाकर वह पक्षी आनन्दमय अश्रुसहित पंख फैलाकर मुनिराज के समीप मोर की भाँति नृत्य करने लगा। अहा! माँसाहारी पक्षी भी जिनमुनिराज की शरण में आने से अत्यन्त शान्त बन गया, उसे जातिस्मरण हुआ, उसके परिणाम निर्मल हुए।

यह गुप्ति और सुगुप्ति दोनों मुनिराज वाराणसी नगरी के राजकुमार थे और वैराग्य प्राप्त कर मुनि हुए थे। गिद्ध पक्षी ने मुनिराज के श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक के व्रत अंगीकार किये और हिंसादि पापों का त्याग किया; अभक्ष्य का त्याग किया और बारम्बार पैर ऊँचे करके, पंख फैलाकर मुनिराज को वन्दन करने लगा। इस प्रकार गिद्ध पक्षी ने श्रावकधर्म अंगीकार किया, यह देखकर सीताजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने वात्सल्यभाव से पक्षी का दुलार किया। मुनिराज भी जाते–जाते शिक्षा दे गये कि इस भयानक वन में क्रूर जीव निवास करते हैं, इसलिए तुम इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की रक्षा करना। पक्षी को जिनधर्मी जानकर राम–

लक्ष्मण–सीता उसके प्रति धर्मानुराग करने लगे और सीताजी तो माता की भाँति उसका पालन करती थीं।

अहा, देखो तो सही, जैनधर्म का प्रभाव! गिद्ध जैसा क्रूर माँसाहारी और कुरूप पक्षी भी मुनिराज के संग से जैनधर्म पाकर, अद्‌भुत रूपवाला बन गया। वाह रे वाह! साधर्मी! भले तू तिर्यंच गति में हो, परन्तु धर्मात्माओं को तुम्हारे प्रति प्रेम आता है! ऐसी अद्‌भुत दशा देखकर, वन के दूसरे पशु–पक्षी भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। अहा! जैन मुनियों की जिस पर कृपा हुई, उसके महाभाग्य की क्या बात!

★ ★ ★

जङ्गल में भी मुनिराज परम सुखी

किसी को ऐसा लगे कि जङ्गल में मुनिराज को अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? **अरे भाई! जङ्गल के बीच निजानन्द में झूलते मुनिराज तो परम सुखी हैं; जगत के राग–द्वेष का शोरगुल वहाँ नहीं है।** किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिए पर के सम्बन्ध बिना आत्मा स्वयमेव अकेला आप अपने में परम सुखी है। पर के सम्बन्ध में आत्मा को सुख हो —ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय मानते हैं।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, गुरुदेवश्री के वचनामृत, १७६, पृष्ठ १०९

खरदूषण के साथ युद्ध और रावण का आगमन

राम–लक्ष्मण ने वन–विहार के दौरान दण्डकवन में निवास किया। एक बार लक्ष्मण वन की शोभा निहारने के लिये निकल पड़े, तभी अचानक आश्चर्यकारी सुगन्ध आयी... जहाँ से सुगन्ध आ रही थी, वहाँ जाकर देखा तो एक अद्भुत 'सूर्यहास' तलवार चमक रही थी। रावण की बहिन चन्द्रनखा का पुत्र शम्बुक ने बारह वर्ष की विद्यासाधना द्वारा इस दैवीय सूर्यहास तलवार को साधा है किन्तु वह विद्या सिद्ध हुई, तभी लक्ष्मण ने आकर उसे हाथ में ले ली और उसकी तीक्ष्ण धारा का प्रयोग करने के लिये बाँस के बीड़ पर उसे चला दिया, उन बाँसों के साथ उनके मध्य रहनेवाले शम्बुक का मस्तक भी छिद गया। अरे दैव! विद्या द्वारा तलवार साधी किसी ने, और हाथ में आयी किसी दूसरे के! बारह–बारह वर्ष की तपस्या द्वारा साधी हुई तलवार स्वयं के ही घात का कारण बनी... तलवार को साधने की अपेक्षा आत्मा को साधा होता तो! कैसा उत्तम फल आता! रावण के पास चन्द्रहास खड्ग था। उसके सामने लक्ष्मण को यह सूर्यहास खड्ग प्राप्त हुआ। देखो, पुण्यप्रभाव! बिना साधे भी पुण्य–प्रताप से उन्हें यह सूर्यहास तलवार हाथ में आयी और हजारों देव उन्हें वासुदेव जानकर उनकी सेवा करने लगे।

शम्बुक का पिता खरदूषण समुद्र के बीच आयी हुई दूसरी पाताल लंका का स्वामी था। शम्बुक के मरण की बात सुनकर उसे एकदम क्रोध उत्पन्न हुआ और बदला लेने के लिये वह तुरन्त आकाशमार्ग से चौदह हजार राजाओं सहित दण्डक वन में आ पहुँचा। सेना के भयानक शब्द सुनकर सीताजी भयभीत हो गईं। श्रीराम ने उन्हें धैर्य प्रदान किया और शत्रु के सम्मुख युद्ध हेतु बाण

हाथ में ले लिया किन्तु लक्ष्मण ने उन्हें रोकते हुए कहा—'हे बड़े भ्राता! मैं उपस्थित हूँ, तब आपको परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। आप यहीं रहें और सीताजी की रक्षा करें। मैं अकेला ही दुश्मनों को पराजित कर भगा दूँगा। और यदि कुछ कष्ट पड़ेगा तो सिंहनाद करके आपको बुलाऊँगा'—ऐसा कहकर लक्ष्मण युद्ध के लिये प्रस्तुत हुए।

एक ओर हजारों विद्याधर तथा दूसरी ओर अकेले लक्ष्मण, महायुद्ध हुआ। विद्याधरों के हजारों बाणों को लक्ष्मण ने अकेले रोका। जिस प्रकार संयमी मुनि आत्मज्ञान द्वारा विषय-वासनाओं का निवारण करते हैं; उसी प्रकार लक्ष्मण वज्रबाण द्वारा दुश्मनों का निवारण करते थे। विद्याधरों की सेना घबरा गयी... इतने में क्रोध से आगबबूला होता हुआ रावण पुष्पक विमान में बैठकर खरदूषण की सहायता के लिये आ पहुँचा।

मार्ग में राम के समीप महासती सीता को देखकर उनके अद्‌भुत रूप में रावण मोहित हो गया... और उसका क्रोध भी क्षण भर को तो विलीन हो गया। वह सीताजी के प्रति ऐसा मोहित हुआ कि इस सीता के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है! इसलिए खरदूषण की सेना में किसी को मेरे आगमन की खबर पड़े, उससे पहले मैं सीता को हरण कर घर ले जाऊँ! परन्तु सीताजी के समीप ही रामचन्द्रजी बैठे थे, इसलिए अपकीर्ति के भय से रावण की हिम्मत नहीं हुई। विद्याबल से उसने जाना कि लक्ष्मण सिंहनाद करे तो राम यहाँ से उनके पास चले जायेंगे और सीता अकेली रहेंगी, इस प्रकार विचार कर रावण ने कपट से लक्ष्मण जैसी ही आवाज निकालकर 'हे राम! हे राम!' ऐसा कृत्रिम सिंहनाद किया।

अरे रे ! कामान्ध रावण मानो सिंहनाद करके अपनी मृत्यु को ही आमन्त्रण दे रहा था ! सिंहनाद सुनते ही राम को झटका लगा और वे तुरन्त हाथ में धनुष–बाण लेकर शीघ्र ही लक्ष्मण की सहायता के लिये दौड़ पड़े।

★ ★ ★

मुनि बनने की भावना

सम्यग्दृष्टि की भावना तो मुनि बनने की ही होती है। वह विचारता है कि अहो! मैं कब चैतन्य में लीन होकर सर्वसङ्ग का परित्यागी होकर मुनिमार्ग में विचरण करूँ। मुनि बनकर चैतन्य के जिस मार्ग पर तीर्थङ्कर विचरे, मैं भी उसी मार्ग पर विचरण करूँ – ऐसा धन्य स्वकाल कब आयेगा ? धर्मीजीव आत्मा के भानपूर्वक इस प्रकार मुनि बनने की भावना भाते हैं। ऐसी भावना होते हुए भी निज पुरुषार्थ की मन्दता और निमित्तरूप में चारित्रमोह की तीव्रता से कुटुम्बीजनों के आग्रहवश स्वयं ऐसा मुनिपद नहीं ले सके तो उस धर्मात्मा को गृहस्थपने में रहकर देवपूजा आदि षटकर्मों का पालन अवश्य करना चाहिए।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, श्रावकधर्मप्रकाश

सीता का अपहरण और राम की वेदना

श्री राम के जाने के पश्चात् रावण सीताजी का अपहरण करके ले गया। उस समय सीताजी के प्रति जिसे सगे भाई जैसा प्रेम है, ऐसे जटायु पक्षी ने रावण को पंख मार–मारकर सीताजी को छुड़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किया किन्तु रावण जैसे बलवान के समक्ष बेचारे पक्षी का क्या वश चलता! रावण के हाथ के झपट्टे से वह मूर्च्छित हो गया और रावण पुष्पक विमान में सीताजी को लेकर भाग गया।

सीताजी अत्यन्त विलाप करने लगीं। राम के विरह में सीता ऐसा रुदन करने लगी कि उसे देखकर रावण भी उदास हुआ। अरे! यह सीता अपने स्वामी के गुण में ही आसक्त है, यह स्वप्न में भी अन्य को नहीं चाहती और मेरे द्वारा इन पर बलजोरी की जाये, यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि मैंने मुनिराज से प्रतिज्ञा की है कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उसे बलजोरी से नहीं भोगूँगा। परन्तु लंका जाकर मैं इस हठीली स्त्री को किसी उपाय से वश में करूँगा – ऐसा विचार करता हुआ रावण, सीताजी को लेकर लंका की ओर चल दिया।

ज्यों–ज्यों लंका नजदीक आती है, त्यों–त्यों मानो उसका मरण भी अब नजदीक आ रहा है।

★ ★ ★

अब इस ओर लक्ष्मण, खरदूषण की सेना के समक्ष युद्ध कर रहे हैं और उन्हें भगाने की तैयारी में हैं, तभी वहाँ राम आ पहुँचे। राम को देखते ही लक्ष्मण को धक्का लगा और कहा – 'हाय हाय! आप ऐसे भयंकर वन में सीताजी को अकेले छोड़कर यहाँ क्यों आये?'

राम ने कहा — 'मैं तेरा सिंहनाद सुनकर आया हूँ।'

लक्ष्मण कहते हैं—'अरे! मैंने तो कोई सिंहनाद नहीं किया, मुझे शत्रु का कोई भय नहीं है। अवश्य किसी ने मायाचार किया है, इसलिए आप शीघ्र ही जानकी के पास वापस जाईये।'

लक्ष्मण की बात सुनते ही राम को सीताजी की सुरक्षा का सन्देह हुआ.. अरे! उस अकेली का क्या हुआ होगा!... शीघ्रता से अपने स्थान पर आकर उन्होंने देखा तो जानकी को वहाँ नहीं पाया... कदाचित् मुझे दृष्टि भ्रम हुआ होगा—ऐसा विचार कर राम ने बारम्बार आँखें घुमाकर नजर की, परन्तु सीता होवे तो दिखायी दे न! राम तो 'हा सीता!' कहते हुए मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। जब मूर्च्छा दूर हुई, तब चारों ओर खोजते-खोजते एक जगह जटायु पक्षी को तड़पते हुए देखा... उसके मरने की तैयारी थी, तुरन्त राम ने अन्य सब भूलकर उसे पंच परमेष्ठी का नमस्कार मन्त्र सुनाया, दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की आराधना सुनायी और अरहन्त आदि का शरण दिया। सम्यक्त्वसहित श्रावकव्रत का धारक वह पक्षी महान शान्तिपूर्वक श्री राम के मुख से धर्म का श्रवण करते-करते समाधिमरण करके स्वर्ग में गया और भविष्य में मोक्ष प्राप्त करेगा।

एक तो सीताजी का विरह और दूसरा जटायु पक्षी का मरण— इस प्रकार दोगुने शोक से राम एकदम विह्वल बन गये। चारों ओर वृक्षों और पहाड़ को भी पूछने लगे—'हे उन्नत गिरिराज! मैं दशरथ राजा का पुत्र राम तुमसे पूछता हूँ कि मेरी प्राणबल्लभा सीता को कहीं देखा है?' परन्तु कौन जवाब दे। घड़ीक में क्रोध करके हाथ में धनुष लेकर टंकार करते हैं, परन्तु किसे मारे! भय के मारे सिंह, बाघ भी दूर भागने लगे... राम पश्चाताप करने लगे कि अरे रे!

मिथ्या सिंहनाद से मैं भ्रमित हो गया और मैंने सीता को अकेली छोड़ दिया। अरे! सीता को सिंह, बाघ खा तो नहीं गया होगा! दूसरी ओर भाई लक्ष्मण भी अभी युद्ध में गया है, वह भी जीवित आयेगा या नहीं, इसका सन्देह है। अरे रे पूरा संसार ही असार और सन्देहरूप है। संयोग का भरोसा क्या! संसार का ऐसा स्वरूप जानते हुए भी मैं सीता के मोह से आकुल-व्याकुल हो रहा हूँ।

पाठक! ध्यान रखना, उस समय भी रामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं, महात्मा हैं, मोक्ष को साध रहे हैं; जिनकी ज्ञानचेतना मिटी नहीं है। उदयभाव तो ऐसे ही होंगे न! वे उदयभाव तो उदयभाव का काम करते हैं और ज्ञानचेतना, ज्ञानचेतना का काम करती है—दोनों का कार्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। मात्र उदयभाव द्वारा राम को नहीं देखना, उनसे भिन्न वर्तती ज्ञानचेतनारूप राम को देखना, तभी तुम्हें राम की पहिचान होगी। राम को मात्र उदयभाव से पहिचानोगे तो तुम राम के साथ अन्याय करोगे। तुम्हारा ज्ञान मिथ्या होगा। जैन महापुरुषों के जीवन की विशिष्टता ही यह है कि उदयभाव के बीच भी चैतन्यभाव की मीठी-मधुर शान्तधारा उनके जीवन में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है; बाकी पूर्व के पुण्य-पाप के उदय तो धर्मी को भी आते ही हैं। ऐसा जानकर, हे भव्य जीवो! शुभ उदय में तुम मोहित मत होओ और अशुभ उदय के समय भी धर्म को मत छोड़ो। संसार की अर्थात् पुण्य-पाप की रचना छोड़कर चैतन्यभाव द्वारा सदा जिनधर्म की आराधना में चित्त को जोड़ो।

★ ★ ★

अब खरदूषण की विशाल सेना के सन्मुख लक्ष्मण अकेले लड़ रहे थे, वहाँ विराधित नामक विद्याधर राजा निकला और उसने

अपनी सेना सहित लक्ष्मण को सहायता की। खरदूषण अपने पुत्र को मारनेवाले लक्ष्मण को मारने के लिये तलवार लेकर दौड़ा परन्तु लक्ष्मण ने सूर्यह्रास तलवार द्वारा उसका सिर उड़ा दिया। अरे ! पुत्र ने बारह वर्ष के तप द्वारा जिस तलवार को साधा है, उसी तलवार द्वारा उसी के पिता का घात हुआ ! अरे ! पुण्य-पाप के खेल संसार में कैसे विचित्र हैं !

लक्ष्मण ने खरदूषण को पराजित कर, उसकी पाताल लंका का राज्य विराधित को सौंप दिया और स्वयं शीघ्र ही राम के पास आये। वहाँ आकर देखा तो राम जमीन पर पड़े हैं और सीता कहीं दिखायी नहीं देती, जटायु भी नहीं है। 'अरे बन्धु ! उठो, उठो ! इस प्रकार जमीन पर क्यों सो रहे हो ? सीताजी कहाँ हैं ?'—लक्ष्मण ने पूछा।

राम ने जागृत होकर देखा और लक्ष्मण को कुशल देखकर थोड़ा सन्तोष हुआ; उसे हृदय से लगाकर राम रो पड़े और कहा—'हे लक्ष्मण ! सीता कहाँ गयी, वह मैं नहीं जानता। कोई उसे हर कर ले गया होगा या सिंह उसे खा गया होगा ! उसकी मुझे कुछ खबर नहीं है।'

लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बँधाकर विद्याधरों को आज्ञा दी कि जहाँ हो, वहाँ से शीघ्र सीता का पता लगाओ। विद्याधरों ने बहुत खोज की, परन्तु सीता कहीं दिखायी नहीं दी, इससे राम हताश हो गये। अरे ! हम माता-पिता, भाई, परिवार और राज्य को छोड़कर यहाँ वन में आाये तो यहाँ भी असाताकर्मों ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा... अरे, संसार की गति !

तब पाताल लंका के राजा विद्याधर विराधित ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—'हे स्वामी ! धैर्य ही महापुरुषों का सर्वस्व है। सर्व प्रसंग

में धैर्य के समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। आपका पुण्य-प्रताप महान है, इसलिए सीतादेवी को अवश्य थोड़े ही दिनों में देखोगे। अत: शोक का परित्याग करो और अब मेरे साथ पाताल नगरी में आकर रहो, वहाँ से सब उपाय करेंगे। इस वन में रहना अब उचित नहीं है क्योंकि रावण के बहनोई खरदूषण को आपने मारा है, इसलिए उसके मित्र विद्याधर राजा बैर लिये बिना नहीं रहेंगे; उसमें भी हनुमान महान शूरवीर है, वह खरदूषण का दामाद है, वह भी खरदूषण के मरण की बात सुनते ही एकदम क्रोधित होगा। इसलिए आप सुरक्षित स्थान में आकर रहिये।'

राम और लक्ष्मण दोनों भाई उदासरूप से विराधित के साथ पाताल लंका की अलंकारोदय नगरी में चल दिये... दोनों उदास हैं। जैसे सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान-चारित्र शोभित नहीं होते; उसी प्रकार सीता के बिना राम-लक्ष्मण भी शोभित नहीं होते थे... सीता के साथ तो वन में भी सुहाता था और सीता के बिना यह राजमहल भी सुहाता नहीं है। सीता के बिना राम गुमशुम उदासचित्त रहते हैं... एक चैतन्यपरिणति के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं उनका चित्त नहीं लगता। वे जिनमन्दिर में जाकर बैठते हैं, उतने समय चित्त को शान्ति रहती है और सीताजी के विरह का दु:ख हल्का हो जाता है। लक्ष्मण, विराधित इत्यादि सब राम को प्रसन्न रखने के लिये सभी उपाय करते हैं। सीताजी के भाई भामण्डल को भी सन्देश भेजकर बुलवा लिया गया है।

★ ★ ★

दूसरी ओर आकाशमार्ग में सूर्य से भी ऊँचा रावण का विमान जा रहा था (क्योंकि विद्याधर ठेठ मेरुपर्वत पर जाते हैं और सूर्य-

चन्द्र तो मेरुपर्वत की अपेक्षा बहुत नीचे हैं; इसलिए सूर्य-चन्द्र से भी ऊँचे गमन करना विद्याधर मनुष्यों के लिये सहज है)। उस समय रत्नजटी नामक विद्याधर ने सीता के रुदन की आवाज सुनी; इसलिए उसने रावण को रोककर कहा—अ'रे दुष्ट! इस धर्मात्मा सीता सती को तू छोड़ दे। सती को सताने का महान अपराध करके तू कहाँ जायेगा! यह सीता श्री राम की रानी और मेरे मित्र भामण्डल की बहिन है, इसे तू छोड़ दे।' विद्याधर के इन वचनों पर कुछ भी ध्यान न देते हुए रावण ने उसकी समस्त विद्याएँ हर लीं, इसलिए वह नीचे गिर पड़ा। रावण, सीता को लेकर लंका पहुँच गया... उसका मन सीता में ही मोहित है और सीता को मोह उत्पन्न करने के लिये बहुत विनय करता है परन्तु यह तो सीता! अरे रावण! तू घर भूला, तू विवेक भूला! जैसे मणिधर नाग के सिर की मणि उसके जीते जी कोई नहीं ले सकता; इसी प्रकार सीता को राम के अतिरिक्त कोई मोह उत्पन्न नहीं कर सकता।

★ ★ ★

राम के विरह में उदास... तथापि शील में अडिग सीता

लंका में रावण ने एक अत्यन्त मनोहर देव बगीचे में सीता को रखा... परन्तु सीता को राम के बिना कहीं चैन नहीं... उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक राम-लक्ष्मण के कुशलक्षेम की बात न सुनूँ, तब तक मुझे अन्न-जल का त्याग है। उन्हें दिन-रात चिन्ता हो रही है कि राम-लक्ष्मण युद्ध में गये थे, उनका क्या हुआ होगा? यहाँ उन्हें समाचार कौन दे! वे कभी पंच परमेष्ठी में चित्त को जोड़ती हैं और उतनी देर संसार के सर्व दुःख को भूल जाती हैं। वाह! पंच परमेष्ठी भगवन्तों! आपका प्रताप अजोड़ है। हमारे हृदय में आपकी उपस्थिति हो, वहाँ संसार का कोई दुःख टिक नहीं सकता।

(पाठकगण! राम और सीता को एक-दूसरे के प्रति विरह की वेदना देखकर आपके चित्त में भी उद्वेग होता होगा परन्तु आप धैर्य रखना! अपने प्रिय हनुमान अभी आ पहुँचेंगे। राम के परममित्र और सीता के धर्म भाई बजरंगबली हनुमान थोड़ी देर में आयेंगे और राम तथा सीता दोनों को शान्ति प्राप्त करायेंगे। यह देखकर आपको भी शान्ति होगी। इससे पूर्व लंका में क्या हो रहा है, यह आप देखिये)।

लंका में जिस तरह राम के विरह में सीता उदास है; उसी प्रकार पाताल लंका में सीता के विरह में राम भी उदास हैं और जिस प्रकार राम उदास हैं, उसी प्रकार रावण भी सीता के बिना उदास है। उसकी पटरानी मन्दोधरी उससे पूछती है कि 'हे नाथ! आप तीन खण्ड के स्वामी होने पर भी इतने अधिक उदास क्यों हैं?' तब रावण सीता सम्बन्धी बात करते हुए कहता है कि उसके बिना मुझे चैन नहीं है।

मन्दोधरी कहती है—'आप तो महा शक्तिशाली हैं तो सीता को बलजोरी से वश में क्यों नहीं करते?'

इसके उत्तर में रावण कहता है—'हे देवी! सुनो! मैंने अनन्तवीर्य केवली प्रभु के समीप ऐसी प्रतिज्ञा की है कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उसे नहीं भोगूँगा, उस पर बलजोरी नहीं करूँगा और सीता मुझे रंचमात्र भी नहीं चाहती है। इसलिए मैं अपनी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ूँ।'

(पाठकगण, देखो! एक छोटा सा नियम भी अभी रावण को कैसा उपयोगी हुआ! इस नियम ने ही उसे सीताजी पर बलजोरी करने से रोका है।)

रावण की बात सुनकर मन्दोधरी विचार में पड़ गयी कि अहा! तीन खण्ड का जो स्वामी, और जिसका अद्‌भुतरूप, ऐसे रावण को भी जो नहीं चाहती, वह सीता कैसी महान होगी? और रावण जैसा चौदह हजार सुन्दर रानियों का स्वामी जिसके रूप में विमोहित हो गया, वह सीता कैसी सुन्दर होगी!

मन्दोधरी को लगा कि मैं सीता के निकट जाऊँ और उसे मनाकर अपने स्वामी का दु:ख मिटाऊँ। यह विचारकर वह सीता के निकट गयी, उसे देखकर वह भी आश्चर्यचकित हो गयी। उसने कहा—'हे देवी सीता! तू रावण पर प्रसन्न हो! उसकी इच्छा के वश हो। राम की आशा छोड़ दे। यहाँ कहीं तेरे राम तुझे छुड़ाने नहीं आ सकेंगे। यह तो विशाल समुद्र के मध्य आयी हुई विद्याधरों की लंका नगरी है। इसलिए तू शोक छोड़कर प्रसन्न हो और रावण की रानी बन! व्यर्थ में दु:खी मत हो।'

मन्दोधरी की यह बात सुनकर, जिसके आँख में से आँसू बह रहे हैं—ऐसी सीता कहने लगी—'हे देवी! आप तो मेरी माता समान हो, आप स्वयं पतिव्रता हो, फिर भी ऐसा नीति विरुद्ध वचन

कैसे बोलती हो! यह तुम्हें शोभा नहीं देता। रावण का अति सुन्दर रूप अथवा उसकी तीन खण्ड की राज्यसम्पदा को मैं मेरे शीलव्रत के समक्ष सर्वथा तुच्छ समझती हूँ।'

(पाठक! सती मन्दोधरी के न्याय के लिये एक बात का यहाँ उल्लेख करते हैं! कितने ही पुराणों में ऐसा भी आता है कि सती मन्दोधरी ने रावण को इस दुष्कृत्य से रोकने के लिये बहुत प्रयत्न किया तथा सीता को भी अपनी पुत्री समान जानकर आश्वासन और हिम्मत प्रदान की और कहा—'बेटी सीता! तू किसी भी प्रकार रावण के वश मत होना, अपने शीलधर्म में अडिग रहना।')

इस प्रकार मन्दोधरी और सीता की बात चल रही थी, तभी वहाँ कामातुर रावण आ पहुँचा। तब सीता ने उसका तिरस्कार करते हुए क्रोध से कहा—'अरे पापी! दुष्ट! तू दूर रहना! मुझे छूना नहीं!' सीता के प्रताप के समक्ष रावण जैसा रावण भी क्षण भर तो कम्पित हो गया। लंका के वन में अकेली सुकौमल सीता सती अनेक उपद्रवों के बीच भी अपने शीलव्रत से रंचमात्र भी नहीं डिगी, सो नहीं ही डिगी। धन्य सीता!

★ ★ ★

रावण का भाई विभीषण धर्मात्मा था और रावण का विशिष्ट सलाहकार था। उसे जब यह घटनाचक्र विदित हुआ, तब वह सीता के निकट आया। सीता रुदन कर रही थी, प्रथम तो वह भयभीत हुई परन्तु विभीषण ने कहा—'बहिन! तू भयभीत न हो, मुझे अपना भाई समझ। मैं रावण को समझाऊँगा।' तत्पश्चात् विभीषण ने रावण को बहुत समझाया कि सीता सती धर्मात्मा है, उसे मानसहित श्रीराम को वापस सौंप दो, ऐसा अनीति का कार्य तुम्हें शोभा नहीं देता किन्तु

अभिमानी रावण ने उसकी बात नहीं मानी। अपितु ऐसा कहा कि मैं तीन खण्ड का स्वामी हूँ, इसलिए तीन खण्ड की जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं, वे मेरी ही हैं।

★ ★ ★

सीता वन में अशोक वृक्ष के नीचे रहती हैं। अनेक विद्याधरी विविध सामग्रियों द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहती हैं परन्तु जिस प्रकार मोक्ष के साधक मुमुक्षु का मन संसार में नहीं लगता; उसी प्रकार सीता का मन उनमें कहीं नहीं लगता था। जिस प्रकार अभव्य जीव मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता; उसी प्रकार रावण की दूतियाँ सीता को नहीं साध सकीं, वश में नहीं कर सकीं। रावण बारम्बार दूतियों को पूछता है; दूतियों द्वारा रावण ने जान लिया कि सीता ने तो आहार-पानी भी छोड़ दिया है और वह किसी के सन्मुख नहीं देखती, पूरे दिन गहरे विचार में गुमसुम बैठी रहती है।—यह सुनकर रावण खेदखिन्न होकर चिन्ता में डूब गया।

अरे रे! अठारह हजार सुन्दरियों का स्वामी भी विषयों की अग्नि में कैसा जल रहा है! ऐसी दुःखदायक विषयतृष्णा से छूटकर जिन्होंने निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व के महा आनन्द को साध लिया है, उन महात्माओं को इस जगत में धन्य है।

★ ★ ★

इधर सीता के विरह में पाताल लंका में राम-लक्ष्मण विराधित राजा के यहाँ गये हैं। उस दौरान कृष्किन्धानगरी के महान राजा सुग्रीव की एक घटना इस प्रकार बनी। सुग्रीव की रानी सुतारा अत्यन्त मनोहर थी। साहसमति नाम का एक विद्याधर उस पर मोहित हुआ और स्वयं सुग्रीव जैसा ही रूप बनाकर महल में घुस

गया। उसने सच्चे सुग्रीव को निकाल दिया। सच्चा सुग्रीव स्त्री के विरह में अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने अपने दामाद हनुमानजी की सहायता माँगी, परन्तु दोनों में से सच्चा सुग्रीव कौन सा है और वेषधारी सुग्रीव कौन सा? यह नहीं पहिचान सकने से हनुमान भी कुछ नहीं कर सके। अन्त में वह सुग्रीव राम-लक्ष्मण की शरण में आया। राम भी स्त्री के विरह में दुःखी थे और सुग्रीव भी स्त्री के विरह में दुःखी था; दोनों समान दुखिया एक-दूसरे के मित्र बन गये। सुग्रीव राजा वानरवंशी विद्याधरों का अधिपति था; उसके बड़े भाई बालीराजा, रावण को सिर झुकाने के बदले जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए थे। सुग्रीव ने आकर राम से सारी घटना कह सुनायी।

श्री राम ने विचार किया कि मैं इसकी स्त्री इसे प्राप्त कराकर इसका दुःख मिटाऊँ, फिर यह भी सीता को खोजकर मेरे उपकार का बदला चुकायेगा और यदि यह सीता को नहीं खोज सके तो मैं निर्ग्रन्थ मुनि होकर मोक्ष की साधना करूँगा। सुग्रीव ने भी कहा— 'हे स्वामी! मेरा कार्य होने के पश्चात् मैं तुरन्त ही सीता की शोध करूँगा।' इसलिए राम ने साहसगति को हराकर सुग्रीव को उसका राज्य और स्त्री वापिस प्राप्त करायी परन्तु अपनी सुतारा के प्राप्त होने पर वह ऐसा आसक्त हो गया कि राम को सीता की खोज का दिया हुआ वचन भी विस्मृत कर गया।

★ ★ ★

सीताजी की खोज में

जिस प्रकार मुनिराज मुक्ति का ध्यान करते हैं; उसी प्रकार राम तो सीताजी का ही ध्यान धरते हैं; सीताजी के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं सुहाता। सीताजी को याद कर-करके श्री राम विचार करते हैं कि अरे! सुग्रीव को उसकी रानी सुतारा मैंने प्राप्त करायी परन्तु वह मेरी सीता के कुछ समाचार नहीं लाया। स्वयं का दुःख मिटते ही वह मेरे दुःख को भूल गया। अथवा सीता मर गयी होगी, इसीलिए वह मुझे कहने नहीं आता होगा!—ऐसे विचार से श्री राम की आँखों में से आँसू गिर पड़ते हैं।

श्री राम की ऐसी दशा देखकर लक्ष्मण से नहीं रहा गया। उन्होंने सुग्रीव को धमकाया—'रे दुष्ट! मेरे राम दुःखी हैं और तू यहाँ अपनी स्त्री के साथ मौज में पड़ा है! सीताजी को खोजने के तेरे वचन को क्या तू भूल गया? अभी राम ने जैसा बनावटी सुग्रीव का हाल किया है, वैसा मैं तेरा हाल करता हूँ!'

लक्ष्मण की फटकार सुनकर सुग्रीव शीघ्र ही लक्ष्मण के चरणों में नतमस्तक हो गया और कहा—'हे देव! मुझे क्षमा करो; मैं अपना वायदा भूल गया था। अब मैं अभी सीता का पता चाहे जहाँ से लगाकर आता हूँ।'—ऐसा कहकर तुरन्त ही देश-देश के विद्याधरों को उसने आज्ञा करते हुए कहा कि—'हे विद्याधरो! सीता कहाँ है, उसकी शीघ्र खोज करो। वन में-जल में-आकाश में-पाताल में-जम्बूद्वीप में-लवण समुद्र में-मेरु पर, ढाई द्वीप में सर्वत्र खोजकर जहाँ हो, वहाँ से पता लगाओ।'—ऐसा कहकर सुग्रीव स्वयं भी आकाशमार्ग से सर्वत्र खोज करने लगा।

आकाश में जा रहे सुग्रीव ने नीचे एक पर्वत पर बेभान होकर

पड़े हुए रत्नजटी को देखा; प्रेम से उसके निकट जाकर पूछा—'हे भाई रत्नजटी ! तेरी विद्याएँ कहाँ गयीं ? तू यहाँ धूल में क्यों पड़ा है ?'

भयभीत रत्नजटी ने कहा—'हे स्वामी ! दुष्ट रावण, सीता का हरण करके ले जा रहा था; सीताजी रुदन कर रही थीं। मैंने उन्हें छुड़ाने के लिये रावण का विरोध किया, इसलिए रावण ने मेरा यह हाल किया है।'

सीताजी के यह समाचार सुनते ही, हर्षित होकर सुग्रीव ने उस रत्नजटी को अपने साथ लिया और दोनों श्री राम निकट आये। रत्नजटी ने आकर राम-लक्ष्मण को प्रणामपूर्वक कहा—'हे स्वामी ! मैं सीता के भाई भामण्डल का सेवक हूँ। मैंने रावण को सीता का हरण करके ले जाते हुए देखा है। महासती सीता रुदन कर रही थीं। मैंने उन्हें रावण से छुड़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किया परन्तु कहाँ कैलाश को कम्पित कर देनेवाला रावण और कहाँ मैं ! उसने मेरी विद्या छीनकर मेरा यह हाल किया है और सीताजी को लंका में उठाकर ले गया है।'

सीताजी की बात सुनकर राम रोमांचित हो उठे। वे विद्याधरों से पूछने लगे कि लंका यहाँ से कितनी दूर है और रावण का बल कितना है ?

राम का प्रश्न सुनते ही सभी विद्याधर नीचे देखने लगे, किसी के मुख से कोई स्वर नहीं निकला, सबके मुख मलिन पड़ गये। तब राम समझ गये कि ये सब विद्याधर रावण से बहुत भयभीत हैं।

श्री राम से आश्वासन पाकर विद्याधरों ने कहा—'हे देव ! जिसका नाम लेने से भी हमें भय लगता है, उस रावण की बात हम क्या कहें ! रावण की शक्ति की क्या बात ! अब तो वस्तु हाथ से गयी,

ऐसा समझिये। सीताजी को वापस प्राप्त करने की आशा अब आप छोड़ ही दीजिये!'

लक्ष्मण ने क्रोधपूर्वक कहा—'तुम डरो नहीं, रावण की लंका कहाँ आयी है, यह तो कहो! यदि रावण शूरवीर था तो चोर की भाँति सीताजी को क्यों ले गया! एक बार मुझे उसका पता दो, फिर मैं उसका अभिमान अवश्य उतार डालूँगा!'

लक्ष्मण की बात सुनकर विद्याधर बोले—'हे लक्ष्मण! इस जम्बूद्वीप के पश्चात् चहुँओर लवणसमुद्र है, उसके बीच राक्षस द्वीप है, उसके बीच नौ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तारवाला त्रिकटाबल पर्वत है, उस पर देवपुरी जैसी अत्यन्त मनोहर लंका नगरी है। उसका राजा रावण महा बलवान है; विभीषण उसका भाई है, वह भी महा बलवान है, वह धर्मात्मा है, जिनधर्म का भक्त है। रावण का भाई कुम्भकर्ण और पुत्र इन्द्रजीत हैं। ये दोनों भी महा बलवान हैं और श्री राम की भाँति चरमशरीरी हैं; हे राम! ऐसे बलवान रावण को युद्ध में पराजित करना अशक्य है, इसलिए यह बात करना उचित नहीं है। हम सीता के समान दूसरी अनेक राज कन्याओं से आपका विवाह कर देंगे, परन्तु सीता को भूल जाना ही श्रेयस्कर है।'

राम ने कहा—'अरे! दूसरी सब बातें छोड़ो, सीता के बिना मुझे दूसरी स्त्रियों से प्रयोजन नहीं है। यदि तुम्हें मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे किसी भी प्रकार से जल्दी सीता को बतलाओ।'

राम तो बस! सीता की हठ लेकर बैठे। लक्ष्मण ने भी क्रोधपूर्वक कहा—'हे विद्याधरो! तुम उस दुष्ट रावण से मत डरो! यदि वह बलवान होता तो सीताजी को चोरी-छुपे क्यों ले गया?—

वह तो कायर है, उसमें शूरवीरता कैसी ? बस ! सीता का पता मिलने पर अब सीता ही मिल गयी, ऐसा समझो और शीघ्र लंका पहुँचने का उपाय करो।'

राम-लक्ष्मण के पराक्रम को देखकर सुग्रीव के मन्त्री जामुन्द ने विचार किया कि कदाचित् यह लक्ष्मण ही रावण को मारनेवाला वासुदेव होगा ! उसने राम से कहा—'हे स्वामी ! एक बार रावण ने नमस्कार करके अनन्तवीर्य केवली से पूछा था कि मेरा मरण किससे होगा ? तब प्रभु की वाणी में ऐसा आया कि जो जीव कोटि शिला को उठायेगा, उसके हाथ से तेरी मृत्यु होगी।'

यह बात सुनते ही लक्ष्मण ने कहा—'कहाँ है कोटिशिला ? चलो, मैं उसे उठाऊँ।'

विद्याधरों के विमान में बैठकर सब कोटिशिला (निर्वाणशिला) के निकट आये। इस पावन शिला से अनेक जीव सिद्ध हुए हैं— ऐसा स्मरण करके उन सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार किया और शिला को भी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार लक्ष्मण ने पंच परमेष्ठी को स्मरण करके सिद्धों की स्तुति की ! अहो भगवन्तो ! आप तीन लोक के शिखर पर चैतन्य की अतीन्द्रिय सत्ता से शोभित हो रहे हैं; आप संसार से पार, आनन्द के पिण्ड, पुरुषाकार, अमूर्त और एक समय में सर्व को जाननेवाले हो; राग-द्वेष से रहित आप मुक्त हो; आपके भाव सर्वथा शुद्ध हैं। इस ढाई द्वीप में अनन्त जीव सिद्ध हुए हैं और अनन्त होंगे। मंगलरूप ऐसे उन सर्व सिद्ध भगवन्त मेरा कल्याण करें।

—इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मण ने कोटिशिला को घुटनों तक ऊँचा कर दिया। देवों ने जय-जयकार किया; विद्याधर भी

लक्ष्मण का बल देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए। इस प्रकार कोटिशिला की यात्रा करके वहाँ से सम्मेदशिखर और कैलाश सिद्धक्षेत्र की भी यात्रा की। भरतक्षेत्र के सब तीर्थों की यात्रा की। विद्याधर राजा समझ गये कि अब थोड़े ही समय में तीन खण्ड में राम–लक्ष्मण का राज्य होगा; इसलिए सब उनकी सेवा करने लगे और सीता को प्राप्त करने के लिये अब क्या करना, यह विचार करने लगे।

राम ने कहा—'हे राजाओ! अब विलम्ब क्यों करते हो! मेरे विरह में सीता लंका में अकेली महादुःखी होती होगी, इसलिए शीघ्र उपाय करो और रावण के साथ युद्ध करने के लिये प्रस्थान करो।'

तब मन्त्रियों ने राम को समझाया—'हे देव! अपने को सीता की प्राप्ति से प्रयोजन है, युद्ध का प्रयोजन नहीं। तीन खण्ड के राजा महाबलवान रावण को युद्ध में पराजित करना अत्यन्त कठिन है; इसलिए युद्ध के बिना सीताजी वापिस मिल जायें, पहले ऐसा उपाय करते हैं। रावण का भाई धर्मात्मा विभीषण श्रावकव्रत का धारक है; दोनों भाईयों में अत्यन्त प्रेम है, उसका वचन रावण उल्लंघन नहीं करता और उसके कहने से शर्मिन्दा होकर सीताजी को वापिस सौंप देगा, इसलिए अपने को कुशल दूत लंका भेजना चाहिए, किन्तु लंका का मायामयी कोट अलंघ्य है। महाशक्तिशाली हनुमान के अतिरिक्त दूसरा तो वहाँ जा ही नहीं सकता और हनुमानजी रावण के परममित्र हैं, वे उसे समझायेंगे, इसलिए उन्हें ही लंका भेजते हैं।' इस प्रकार निर्णय होने पर तुरन्त हनुमानजी को बुलाने के लिये दूत भेजा गया।

दूत श्रीपुरनगर पहुँचा और नगरी की शोभा देखकर आश्चर्यचकित हो गया। दूत ने राजमहल में आकर हनुमान तथा अनंगकुसुमा को

समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। अनंगकुसुमा रावण की भानेज; उसके पिता और भाई को अर्थात् खरदूषण और शम्बुक को लक्ष्मण ने मारा है, यह सुनते ही वह मूर्च्छित हो गयी और हनुमान को भी लक्ष्मण के प्रति क्रोध हुआ परन्तु पश्चात् दूत ने उन्हें शान्त करते हुए समस्त वृत्तान्त कहा। दूत ने बताया कि सुग्रीव का संकट दूर करके उसका राज्य तथा उसकी रानी श्री राम-लक्ष्मण ने वापस प्रदान कराया है। यह सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए। (खरदूषण की तरह सुग्रीव भी हनुमान के ससुर होते हैं। एक को लक्ष्मण ने मारा; दूसरे को राम ने बचाया)।

हनुमान ने कहा—'सुग्रीव का दुःख मिटाकर राम ने हमारे प्रति महा उपकार किया है;' इस प्रकार हनुमान ने परोक्षरूप से राम की बहुत प्रशंसा की।

सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा भी पिता का दुःख मिटा हुआ जानकर हर्षित हुई। एक ही राजा की दो रानियाँ! उसमें एक रानी के वहाँ पिता के मरण का शोक और दूसरी रानी के यहाँ पिता की विजय का उत्सव! कैसा विचित्र है संसार! ऐसे संसार के बीच रहने पर भी अपने चरित्रनायक की ज्ञानचेतना तो इन प्रसंगों से अलिप्त ही रहती है.. मोक्ष के निशान को कभी चूकती नहीं है। धन्य है उन चरमशरीरी को!

श्री राम और हनुमान का मिलन

हनुमानजी, राम की सहायता के लिये शीघ्रता से किष्कन्धापुर आ पहुँचे। दूसरे भी कितने ही विद्याधर राजा हनुमानजी के साथ विशाल सेना लेकर आकाशमार्ग से चल दिये। हनुमान के विमान की ध्वजा में वानर का चिह्न शोभित होता है। सुग्रीव महाराज ने नगरी

का श्रृंगार करके हनुमान का स्वागत किया; हनुमानजी शीघ्र ही राम के निकट आ पहुँचे। अहो! एक चरमशरीरी महात्मा के पास दूसरे चरमशरीरी धर्मात्मा आ पहुँचे... राम और हनुमान का पहली बार मिलन हुआ... दोनों साधर्मी एक-दूसरे को देखकर परम प्रसन्न हुए। श्री राम की गम्भीर मुद्रा और अद्‌भुत रूप देखकर पवनपुत्र का चित्त प्रसन्नता से नम्रीभूत हुआ; श्री राम भी अंजनी के पुत्र को देखते ही प्रसन्नता से उसके सन्मुख गये और उससे मिले।—अहा, कैसा अद्‌भुत होगा वह दृश्य! कि राम और हनुमान जैसे दो मोक्षगामी महात्मा एक-दूसरे से मिल रहे हों! वाह रे वाह—जैनधर्म! तेरा साधर्मी वात्सल्य जगत में अजोड़ है, 'सच्चा साथ साधर्मी का' यह सत्य ही कहा है।

सीता के विरह से उदास होने पर भी जिनका पुण्य-प्रताप गुप्त नहीं रह सकता, ऐसे श्री राम का प्रताप देखकर आश्चर्यपूर्वक हनुमान कहने लगे—'हे देव! किसी की प्रशंसा करनी हो तो परोक्ष की जाती है, प्रत्यक्ष में नहीं की जाती-ऐसा व्यवहार है, परन्तु आपके गुण देखकर मेरा मन आपकी प्रत्यक्ष स्तुति करने के लिये प्रेरित हो रहा है। आपके गुणों की जो महिमा हमने सुनी थी, उससे भी विशेष गुण आज नजरों से देखे हैं। आप ही इस भरतक्षेत्र के स्वामी हैं, आपने हमारे प्रति उपकार किया है, हम आपकी क्या सेवा करें? उपकार करनेवाली की जो सेवा नहीं करता, उसके भाव में शुद्धता नहीं है। जो उपकार भूलकर कृतघ्नी होता है, वह दुर्बुद्धि जीव न्याय से विमुख है। इसलिए हे राघव! मैं शरीर त्यागकर भी आपका काम शीघ्र करूँगा; आप चिन्ता छोड़ दीजिये। अब थोड़े ही समय में आप सीताजी का मुख देखेंगे। मैं अभी लंका जा रहा

हूँ और अतिशीघ्र ही सीताजी का सन्देश लाता हूँ।'

तब श्री राम ने अत्यन्त प्रीति से एकान्त में हनुमान से कहा—'हे वायुपुत्र! तुम मेरे परममित्र हो। सीता को कहने कि हे महासती! तुम्हारे वियोग में राम को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता! तुम महा शीलवन्ती सती-धर्मात्मा हो, अभी परवश हो किन्तु धैर्य रखना, मेरे वियोग में प्राण मत छोड़ देना। आर्त-रौद्रध्यान न करके जैनधर्म की शरण रखना। पूर्व के पुण्य-पाप अनुसार संयोग-वियोग तो आते हैं, उनमें जैनधर्म की जाननेवाली तुम, आत्मभावना भाना। हम शीघ्र आकर तुम्हें रावण से छुड़ायेंगे।' इस प्रकार हनुमानजी से कहते-कहते राम गद्गद् हो गये।

हनुमान ने कहा—'हे देव! आपकी आज्ञाप्रमाण मैं माता सीता से कहूँगा और उसका सन्देश लेकर शीघ्र ही वापिस आऊँगा, तब तक आप धैर्य रखना।'

—इस प्रकार कहकर श्री हनुमान ने राम से विदा ली और पंच परमेष्ठी के स्मरणपूर्वक आकाशमार्ग से प्रयाण किया। श्री राम आकाशमार्ग में जा रहे हनुमान को देखते रहे।

★ ★ ★

हनुमान... लंका की ओर

अंजनीपुत्र हनुमान आकाशमार्ग से लंका की ओर जा रहे हैं। उनका चित्त महा प्रसन्न है कि वाह ! श्री राम और सीता जैसे साधर्मी धर्मात्माओं की सहायता का यह अवसर है। साधर्मी का संकट कैसे देखा जा सकता है ? मैं शीघ्र ही उसे दूर करूँगा और राम-सीता का मिलन कराऊँगा—इस प्रकार सीता के दर्शन के लिये जिनका चित्त उत्सुक है, ऐसे पवनपुत्र पवन से भी अधिक तेजी से जा रहे हैं... आहाहा! अपनी जानकी बहिन को लेने के लिये मानो भामण्डल भाई ही जा रहा है ! वहाँ मार्ग में विमान में से महेन्द्रपुरी नगरी दिखायी दी... और हनुमान ने अचानक विमान रोक दिया।

पाठकगण ! इस पुस्तक के पहले भाग (दो सखियाँ) की घटना आपको स्मरण होगी कि हनुमानजी की माता अंजना को उनकी सासु ने कलंकित समझकर निकाल दिया था और वह अपने पीहर सहारा लेने आयी थी, तब उसके पिता ने राजा महेन्द्र ने भी उसके प्रति शंकाशील होकर उसे नगरी में से निकाल दिया था, वही यह नगरी है। उसे देखते ही हनुमानजी को विचार आया कि अरे ! मेरे नाना महेन्द्रकुमार ने बिना विचारे तिरस्कार करके मेरी माता को महाकष्ट में डाल दिया और मेरी माता को वन में जाकर रहना पड़ा.. वहाँ गुफा में अनन्तमति मुनिराज के दर्शन के प्रताप से मेरी माता को आश्वासन मिला; मेरा जन्म भी वन में ही हुआ। अरे ! दुःख से शरण में आयी हुई मेरी माता को भी नहीं रखा, उस महेन्द्र राजा का गर्व मैं उतारूँगा – ऐसा विचार कर हनुमान ने रणभेरी बजा दी। अचानक रणभेरी सुनते ही राजा महेन्द्र सेना लेकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हुआ। उन्होंने हनुमान पर बाण चलाया परन्तु जिस प्रकार

मुनिराजों को कामबाण नहीं लगता; उसी प्रकार हनुमान को एक भी बाण नहीं लगा; राजा महेन्द्र ने क्रोधपूर्वक भयंकर विक्रिया करके हनुमान पर हमला बोल दिया परन्तु हनुमान बिना व्याकुल हुए एकाएक अपने रथ में से छलांग लगाकर उन राजा महेन्द्र के रथ में कूद पड़े और उन्हें बाहुपाश में पकड़कर अपने रथ में लाये। जिस प्रकार मुनिवर विषय-वासना को जीत लेते हैं; उसी प्रकार क्षणमात्र में वीर हनुमान ने राजा महेन्द्र को जीत लिया।

हनुमान की वीरता देखकर राजा महेन्द्र ने कहा—'हे पुत्र! तुम्हारा प्रताप जैसा हमने सुना था, वैसा आज प्रत्यक्ष देख लिया। हमारे अपराध क्षमा करो। तुम चरमशरीरी, महाप्रतापी हो, तुमने हमारे कुल को उज्ज्वल किया... हमारे कुल में मानों गुणों का कल्पवृक्ष ही फलित हुआ!' इस प्रकार बहुत प्रशंसा करके रोमांचपूर्वक उन्होंने हनुमान को प्रेम से गले लगाकर बारम्बार उनके मस्तक का चुम्बन किया।

हनुमान ने भी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर अपने नाना से क्षमायाचना की... महापुरुष बिना कारण बैर नहीं रखते। देखो, क्रोध के स्थान ने क्षणभर में प्रेम उमड़ पड़ा। जीव के परिणाम एक क्षण में कुछ के कुछ पलट जाते हैं। क्रोध, जीव का स्वभाव नहीं है; इसलिए वह दीर्घ काल तक नहीं टिक सकता। जीव का स्वभाव क्षमा है—ऐसा जानकर, हे जीवो! तुम क्षमा को धारण करो।

हनुमान ने राजा महेन्द्र से समस्त वृत्तान्त कहकर उन्हें राम की सेवा में जाने की बात भी कही और लंकापुरी की ओर गमन कर दिया।

हनुमान की बात सुनकर राजा महेन्द्र अपने पुत्र तथा रानी सहित

सर्व प्रथम तो अपनी पुत्री अंजना के पास गये और उनसे हनुमान के महापराक्रम का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। अंजना तो यह सुनकर तथा अपने माता-पिता और भाई के मिलाप से अत्यन्त प्रसन्न हुई, इससे भी अधिक प्रसन्नता उसे यह जानकर हुई कि मेरा पुत्र, मेरे समान ही एक सती सीता धर्मात्मा की सहायता के लिये जा रहा है ! अहा ! वह सीता कैसी होंगी ! एक बार मैं भी वन में थी, उसी प्रकार आज सीता भी राम से दूर-दूर रावण के उद्यान में रह रही है । यद्यपि रावण बहुत बलवान है, तथापि मेरा पराक्रमी पुत्र हनुमान अवश्य ही सीता के पास पहुँचेगा और उसे मुक्त करेगा। धन्य यह प्रसंग कि जब मेरी साधर्मी बहिन सीता का मुझे मिलाप होगा !

अंजना से मिलकर वहाँ से राजा महेन्द्र श्री राम की सेवा में किष्कन्धानगरी पहुँच गये। अहा ! देखो पुण्य का प्रताप, जिसके कारण भूमिगोचरी मनुष्य की भी बड़े-बड़े विद्याधर राजा और देव सेवा कर रहे हैं। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि हे जीवो ! तुम पापकार्य छोड़कर देव-गुरु-धर्म की सेवा के सत्कार्य में लगो।

★ ★ ★

श्री हनुमानजी लंका की ओर जा रहे हैं, तभी...

दधिमुखनगरी के बाहर एक घोर वन में दो चारणऋद्धिवन्त मुनिवर आठ दिन से ध्यान में खड़े हैं। उसी वन में थोड़ी दूर तीन राजकुमारियाँ मनोनुगामिनी विद्या साध रही हैं, उन्हें आज बारहवाँ दिन है। जिस प्रकार मोक्षमार्ग में तीन वीतरागी रत्न सुशोभित होते हैं; उसी प्रकार निर्मल चित्तवाली तीनों कन्याएँ वन में सुशोभित हो रही हैं। अंगारक नामक दुष्ट विद्याधर उन कन्याओं पर मोहित होकर

उनसे विवाह करना चाहता है परन्तु राजकन्याओं के मन में तो श्री राम ही बसे हुए हैं। अंगारक विद्याधर ने कन्याओं को वश करने के लिये क्रोधपूर्वक वन में आग लगा दी। वन में ध्यानस्थ खड़े दो मुनि तथा तीनों कन्याओं पर अग्नि का घोर उपद्रव हुआ, परन्तु उपद्रव के बीच न तो डिगे मुनिवर और न डिगीं राजकन्याएँ; सब अपनी-अपनी साधना में मस्त थे।

इतने में ऊपर से हनुमानजी का विमान निकला, मुनियों को आग में फँसे हुए देखकर तुरन्त ही हनुमानजी विमान से नीचे उतरे और उन्होंने विद्याबल से पानी की मूसलाधार वर्षा कर दी। जिस प्रकार मुनिवर क्षमा द्वारा क्रोधाग्नि को बुझाते हैं; उसी प्रकार मुनिभक्त हनुमानजी ने वन की आग को बुझा दिया।

इस प्रकार मुनिवरों का उपसर्ग दूर करके हनुमानजी उनकी पूजा-स्तुति कर रहे थे, उसी समय तीनों राजकन्याएँ वहाँ आ पहुँची और कहने लगीं—'हे तात्! आपने इस वन की आग में से हमें बचाकर महान उपकार किया है। हम यहाँ विद्यासाधन कर रही थीं, जिन्हें सिद्ध करते हुए बारह वर्ष से भी अधिक समय लगता है परन्तु यहाँ उपसर्ग के बीच हम निर्भय रहे, इसलिए वह विद्या हमें आज बारह दिन में ही सिद्ध हो गयी है। हमारे निमित्त से मुनिराज के ऊपर उपसर्ग हुआ परन्तु मुनिराज के प्रताप से हमारी रक्षा हुई। अहो बन्धु! आपकी जिनभक्ति और मुनिभक्ति वास्तव में अद्भुत है!'

हनुमान ने उन कन्याओं को श्री राम का परिचय दिया और कहा कि अब तुम्हें श्री राम के दर्शन होंगे और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। निश्चयवन्त जीव को उद्यम द्वारा स्वकार्य की सिद्धि होती ही है-ऐसा कहकर हनुमानजी वहाँ से विदा हुए।

अब लवणसमुद्र के बीच आये हुए विकृताचल पर्वत (जिस पर रावण की लंका नगरी है), वहाँ हनुमानजी आ पहुँचे। वहाँ रावण के मायामयी यन्त्र के कारण उनकी सेना वहीं रुक गयी। हनुमानजी विचार में पड़ गये कि अरे! यह क्या हुआ? विमान क्यों नहीं चलता? क्या नीचे कोई चरमशरीरी मुनिराज विराजमान हैं? अथवा कोई भव्य जिनमन्दिर है? या किसी शत्रु ने विमान को रोका है?

मन्त्री ने जाँच करके कहा—'हे स्वामी! यह तो लंका का मायामयी कोट है; यह मायावी पुतली सर्वभक्षी है, इसके मुख में प्रवेश करनेवाला कभी बाहर नहीं निकल सकता। चारों ओर हजारों फणीधर सर्प मुख फाड़-फाड़कर, फण ऊँचा कर-करके भयंकर फुँफकार कर रहे हैं, ऊपर से विष जैसे अग्नि कणों की वर्षा बरसती है। दुष्ट मायावी विद्या द्वारा रावण ने रची हुई यह लंका का घुमता हुआ मायावी कोट सूर्य-चन्द्र से भी ऊँचा है, इसमें बिना विचारे जो प्रवेश करता है, वह अपनी मौत का ही साक्षात्कार करता है।'

हनुमान ने कहा—'जैसे मुनिवर आत्मध्यान द्वारा माया को नष्ट कर डालते हैं; उसी प्रकार मैं अपनी विद्या द्वारा रावण की इस माया को उखाड़ दूँगा'—ऐसा कहकर हनुमान ने सेना को तो आकाश में खड़े रखा और स्वयं मायामयी पुतली के मुख में प्रवेश करके विद्याबल से उसका विदारण कर दिया और जिस प्रकार मुनिवर शुक्लध्यान के प्रहार द्वारा घनघाती कर्मों को तोड़ डालते हैं, उसी प्रकार हनुमान ने गदा के प्रहार से रावण का गढ़ तोड़ दिया। जैसे जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से पाप पलायन कर जाते हैं; उसी प्रकार हनुमान को देखकर राक्षस पलायन कर गये। हनुमान के चक्र द्वारा कोटपाल का मरण हुआ, इसलिए उसकी पुत्री लंका सुन्दरी

अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्ध करने को प्रस्तुत हुई। अनेक प्रकार की विद्याओं द्वारा दोनों के बीच बहुत समय तक युद्ध चलता रहा। अद्भुतरूप से गर्वित उस लंका सुन्दरी को कोई पराजित नहीं कर सकता था। वह हनुमान पर जोरदार बाण चलाने लगी परन्तु अचानक उन कामदेव का अद्भुतरूप देखकर वह लंका सुन्दरी ऐसी मूर्च्छित हुई कि स्वयं ही कामबाण से विंध गयी। विह्वल होकर उसने बाण के साथ एक प्रेमपत्र बाँधकर वह बाण हनुमान के चरणों में फेंक दिया। बाण के बहाने वही हनुमान के शरण में आ गयी... हनुमानजी का हृदय भी उस पत्ररूप बाण से विंध गया। इस प्रकार पुष्प बाण द्वारा ही दोनों ने एक-दूसरे को वश कर लिया।

अरे! संसारी जीव की विचित्रता तो देखो! क्षणभर में रौद्र परिणाम, क्षण भर में वीर रस, क्षण में किसी को मार डालने का तीव्र द्वेष और दूसरे क्षण वापस उसी के प्रति अत्यन्त प्रेम! क्षण में क्रोधरस, क्षण में शान्तरस, क्षण में शोक और क्षण में हर्ष—ऐसे अनेक परिणाम में जीव वर्तता है, उसमें वीतरागी शान्तरस ही सच्चा रस है। बाकी सब नीरस है। अरस आत्मा का वह शान्तरस चखनेवाले धर्मात्मा सम्पूर्ण संसार को नीरस जानते हैं।

हनुमान ने लंका सुन्दरी को वश करके लंका की ओर जाने की तैयारी की; उन्होंने लंका सुन्दरी से सम्पूर्ण वार्ता कही, तब लंका सुन्दरी ने कहा—'हे स्वामी! आप सँभलकर जाना, क्योंकि रावण को अब आपके प्रति पहले जैसा स्नेह नहीं है। पहले तो आप लंका में आते थे, तब पूरा नगर श्रृंगार कर आपका स्वागत करता था परन्तु अब तो रावण आपसे नाराज है; इसलिए वह आपको पकड़ लेगा, अतः सावधान रहना।'

हनुमान ने कहा—'हे देवी ! मैं लंका में जाकर उसका अभिप्राय जानूँगा। मुझे जगत प्रसिद्ध सती सीता के दर्शन की भावना जागृत हुई है। अरे, रावण जैसा रावण-जिसका मन सुमेरु पर्वत समान अचल था, वह भी जिसका रूप देखकर चलित हो गया, वह सती सीता मेरी माता समान है; मैं उन्हें देखना चाहता हूँ'—ऐसा कहकर हनुमानजी ने शीघ्र लंका नगरी में प्रवेश किया।

हनुमान सर्व प्रथम विभीषण के पास गये। विभीषण ने उनका सम्मान किया। हनुमान ने कहा—'हे पूज्य ! आप तो धर्मात्मा हैं, जिनधर्म के ज्ञाता हैं; आपका भाई रावण अर्ध भरतक्षेत्र का राजा है, वह इस प्रकार परायी स्त्री को चुरा लाता है, क्या यह उचित है ? राजा होकर ऐसा अन्याय करना शोभा नहीं देता। आपके वंश में अनेक महापुरुष मोक्षगामी हुए हैं, उनकी उज्ज्वल कीर्ति में ऐसे कार्य से अपयश लगेगा; इसलिए रावण को समझाओ कि वह सीता को वापस सौंप दे !'

विभीषण ने कहा—'बेटा हनुमान ! मैंने अपने भाई को बहुत समझाया परन्तु वह मानता नहीं है। वह सीताजी को ले आया, तब से मुझसे बोलता भी नहीं है, तो भी मैं उसे जोर देकर समझाऊँगा। मुझे भी इस घटना से दुःख हो रहा है। सीताजी यहाँ आयी हैं, तब से वे निराहार है। आज ग्यारह दिन हुए हैं, उन्होंने कुछ नहीं खाया है। अरे ! वे पानी भी नहीं पीती हैं, तथापि विषयान्ध रावण को दया नहीं आती है। उदास सीता प्रमद नामक वन में अकेली बैठी-बैठी जिनेश्वरदेव और राम का जाप जप-जपकर महा कठिनाई से जीवित है।'

—यह सुनते ही हनुमान का कोमल हृदय दया से भर गया; वे

तुरन्त ही जहाँ सीता विराजमान थी, वहाँ आये... उस महासती सम्यग्दर्शन की धारक सीतादेवी को दूर से देखा... जिस प्रकार जिनवाणी को पाकर भव्य जीव प्रसन्न होता है; उसी प्रकार सीताजी के दर्शन से हनुमान प्रसन्न हुए। शान्तमूर्ति सीताजी उदास चित्त से बैठी हैं। बाल बिखरे हुए हैं, आँखें आँसुओं से भरी हैं, शरीर सूख गया है, दुःख में डूबी हुई होने पर भी आत्मतेज से उनकी मुद्रा झलक रही है। उन्हें देखते ही हनुमान को लगा—धन्य माता! धन्य सीता! इनके समान दूसरी कोई नारी नहीं है। इनका संकट मुझसे नहीं देखा जाता। मैं शीघ्र ही इन्हें यहाँ से छुड़ाकर श्रीराम से मिलाऊँ, इस कार्य हेतु मुझे अपने प्राण देने पड़ें, तो भी मैं सहर्ष तैयार हूँ।

जीवन में हनुमान ने सीता को पहली ही बार देखा.. धर्मात्मा को देखकर उनके अन्तर में वात्सल्य उमड़ पड़ा... तथा सीता की एकाकी दशा देखकर वैराग्य भी हुआ कि अरे! रामचन्द्र जैसे महापुरुष की पटरानी अभी यहाँ लंका के वन में अकेली बैठी है... भले अकेली, परन्तु इनकी अनुभूति तो इनके साथ है न! अहा! चैतन्य की अनुभूति जैसा जीव का साथीदार दूसरा कौन है—जो कि मोक्षपुरी का साथ दे! जीव को दुःख में या सुख में, संसार में या मोक्ष में दूसरा कोई साथीदार नहीं है। जिस प्रकार अपने एकत्व में परिणमित मुनि वन में अकेले शोभित होते हैं; उसी प्रकार सीता भी अकेली-अकेली आर्यिकावत् शोभित हो रही हैं। यह उपवन भी सीताजी के प्रताप से प्रफुल्लित लगता है।

—इस प्रकार क्षणभर विचार कर हनुमानजी ने रामचन्द्रजी की अँगूठी वृक्ष के ऊपर से सीताजी की गोद में डाल दी। अचानक राम की मुद्रा देखते ही सीताजी तो आश्चर्यचकित हो गयीं। अरे!

यह अँगूठी कहाँ से ? अवश्य कोई सत्पुरुष मेरे स्वामी का सन्देश लेकर आ पहुँचा है !—ऐसे विचार से सीताजी के मुख पर प्रसन्नता छा गयी।

हमेशा उदास रहनेवाली सीता को अचानक प्रसन्न देखकर रावण की दूतियाँ एकदम प्रसन्न होकर रावण के निकट जाकर कहने लगीं—'हे देव ! आज सीता प्रसन्न हुई है। रावण ने उन दूतियों को बहुत इनाम दिया और तुरन्त ही मन्दोदरी इत्यादि रानियों को सीता के पास उन्हें समझाने के लिये भेजा।'

मन्दोदरी कहने लगी—'हे बाला! तू आज प्रसन्न हुई, यह अच्छा हुआ। अब तू रावण को स्वामीरूप से अंगीकार कर और उसके साथ इन्द्राणी के समान सुख को भोग।'

यह सुनते ही सीता ने क्रोध से कहा—'अरे, वाचाल ! यह तू क्या बकती है ! तेरी बकवास बन्द कर। मैं कहीं रावण पर प्रसन्न नहीं हुई; आज तो मेरे स्वामी के समाचार आये हैं, मेरे स्वामी कुशल हैं, यह जानकर मुझे हर्ष हुआ है।'

मन्दोदरी ने कहा—'अरे, सीता! यहाँ लंका में उन राम के समाचार कैसे ? मुझे लगता है कि तू ग्यारह दिन से भूखी है; इसलिए तुझे वायु का प्रकोप हुआ है, इस कारण तू ऐसा बोल रही है।'

सीता ने हाथ में राम की अँगूठी लेकर पुकार किया—'हे भाई ! मैं सीता इस लंका के भयानक वन में पड़ी हूँ, महावात्सल्यधारक मेरे भाई समान कोई उत्तम जीव मेरे स्वामी की मुद्रिका लेकर यहाँ आया है, वह मुझे प्रगट दर्शन दे।'

★ ★ ★

सीताजी की पुकार सुनते ही तुरन्त छलाँग मारकर हनुमान प्रगट हुए और सन्मुख आकर सीता को नमस्कार किया। अहा, सीता का धर्म भाई आया। जैसे भाई भामण्डल सीता के पास आता है; वैसे ही हनुमान, सीता के समीप आये... मानो भाई अपनी प्रिय बहिन को लेने आया हो! इस प्रकार निर्दोष भाई-बहिन का मिलन मन्दोदरी भी आश्चर्य से देख रही थी। महाप्रतापी व्रजअंगधारी हनुमान निर्भयरूप से सीताजी के सन्मुख खड़े हैं। प्रथम उन्होंने अपनी पहिचान कराते हुए कहा—'हे माते! मैं माता अंजना का पुत्र हनुमान हूँ। पवन मेरे पिता हैं; मैं रामचन्द्र का सेवक, आपको नमस्कार करता हूँ। श्री राम ने मुझे यहाँ भेजा है। हे देवी! राम-लक्ष्मण कुशल हैं, स्वर्ग जैसे महल में रहते हैं परन्तु आपके वियोग से उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ता। जिस प्रकार मुनि दिन रात आत्मा को ध्याते हैं; इसी प्रकार राम दिन-रात आपका ध्यान करते हैं और आपके मिलन की आशा से ही जी रहे हैं।'

हनुमान की बात सुनकर सीता आनन्दित हुईं, वे बोलीं—'हे भाई! तूने ऐसे उत्तम समाचार मुझे प्रदान किये हैं, इसलिए मैं प्रसन्न हुई हूँ, परन्तु अभी मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है कि मैं तुझे इनाम दूँ।'

हनुमान ने कहा—'हे पूज्य देवी! आपके दर्शन से ही मुझे महान लाभ हुआ है। आपके समान उत्तम धर्म बहिन मिली, इससे उत्तम दूसरा क्या है?'

सीता ने सब पूछा—'हे भाई! चारों ओर समुद्र से घिरी हुई इस लंका नगरी में तुम किस प्रकार आये? क्या तुमने वास्तव में राम-लक्ष्मण को देखा है? तुम्हें उनके साथ मित्रता किस प्रकार हुई? कदाचित् मेरे वियोग में राम ने देह-परित्याग किया हो और उनकी

अँगूठी गिर गयी हो, उसे लेकर तुम आये हो—ऐसा तो नहीं है न? अथवा तो मुझे रिझाने के लिये यह रावण का कोई मायाजाल तो नहीं है न?' इस प्रकार शंका-आशंका करके सीताजी पूछने लगीं।

समाधान कराते हुए हनुमान ने उन्हें समस्त वृत्तान्त कहा तथा राम ने जो आन्तरिक प्रसंग कहे थे, वे सब सीता को कह सुनाये। जटायु पक्षी की बात भी कही; रत्नजटी विद्याधर की बात भी कही—ऐसे सर्व प्रकार से सीता को विश्वास उत्पन्न कराया और कहा—'हे बहिन! तू मुझे अपना भाई ही जान। तुम धैर्य रखना। लंका का राजा रावण सत्यवादी है, दयावान है, मैं उसे समझाऊँगा, वह मेरा वचन मानकर शीघ्र तुझे राम के पास वापिस भेजेगा अथवा राम-लक्ष्मण आकर रावण को मारकर तुझे ले जायेंगे।'

यह सब सुनकर मन्दोदरी कहने लगी—'अरे, हनुमान! तू तो हमारा भनेजा-दामाद है, लंका का राजा तुझे अपने भाई समान गिनता है; तुमने अनेक बार युद्ध में विजयश्री दिलाने में उनकी सहायता की है; तुम आकाशगामी विद्याधर होने पर भी अभी भूमिगोचरी राम का दूत बनकर आये हो! रावण का पक्ष छोड़कर तुमने राम का पक्ष किया, यह तुम्हें क्या हुआ?'

तब हनुमान कहते हैं—'अरे, माता! तू राजा मद की पुत्री, महासती और रावण की पटरानी होने पर भी ऐसे दुष्ट कार्य में रावण का दूतीपना करने आयी है! यह तुझे शोभा नहीं देता। ऐसे पापकार्य से रावण को रोकने के बदले उल्टे तू उसकी अनुमोदना क्यों कर रही है! तेरा स्वामी विषयोंरूपी विषभक्षण से मरण सन्मुख जा रहा है, उसे तू क्यों नहीं रोकती? क्या ऐसा अकार्य तुझे शोभा देता है?

तू तो राजा रावण की महिषी (पटरानी) है या फिर महिषी (बड़ी भैंस) है!'

अपना अपमान होने पर मन्दोदरी क्रोधित हो गयी और कहने लगी—'अरे, हनुमान! तू तो अभी बालक जैसा है। तू राम का दूत होकर लंका में आया है, यदि यह बात लंकापति जानेगा तो तुझे पकड़कर मार डालेगा; इसलिए वन में भटकनेवाले राम की सेवा छोड़कर तू लंकापति की सेवा कर।'

इसके उत्तर में सीताजी कहने लगीं—'रे दुष्टा! तेरा पति पापी है, अब उसका मरण नजदीक आया है। मेरे राम-लक्ष्मण के पराक्रम की अभी तुझे खबर नहीं है। अभी समुद्र उल्लंघकर वे यहाँ आयेंगे और तेरे पति को मार डालेंगे, तू विधवा हो जायेगी।'

ऐसे अनिष्ट वचन सुनकर मन्दोदरी इत्यादि अट्ठारह हजार रानियाँ सीता को मारने दौड़ीं परन्तु वीर हनुमान ने बीच में पहुँच कर उन सबको भगा दिया। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोग को दूर करता है; उसी प्रकार वीर हनुमान ने रानियों को भगाकर सीता का उपद्रव दूर किया।

उन रानियों के भाग जाने के पश्चात् हनुमान ने सीता से विनती की—'हे बहिन सीता! अब तू आहार-पानी ग्रहण कर। यह सारी पृथ्वी राम की ही है—ऐसा समझ। राम के कुशल समाचार सुनने की तेरी प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो गयी है। इसलिए हे बहिन! अब तू भोजन ग्रहण कर। अपने हाथ से ही मैं तुझे पारणा कराऊँगा।'

महा विचक्षण सती सीता ने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई होने से भोजन के लिए हाँ कर दिया... थोड़ी देर में ही सोने की थाली में

शुद्ध भोजन आ गया। सीता ने समीपवर्ती साधर्मी को आमन्त्रित किया, हनुमान के प्रति भाई जैसा प्रेम किया। पंच परमेष्ठी के स्मरणपूर्वक, मुनि इत्यादि को आहारदान देने की अभिलाषासहित श्री राम को हृदय में चिन्तवन करके सीता भोजन ग्रहण करने के लिये बैठ गयीं। हनुमान ने पास में ही बैठकर अत्यन्त वात्सल्यभाव से सीता को भोजन कराया... अहा! लंका नगरी में ग्यारह दिन की उपवासी सीता बहिन को उसका धर्मभाई प्रेम से पारणा कराता है। बहिन को पारणा कराते हुए हनुमान के हर्ष का पार नहीं है। सीता ने भाई जैसे हेतु से हनुमान को भी वहीं भोजन कराया। वाह रे वाह धर्म वात्सल्य! साधर्मी धर्मात्मा का प्रेम देखकर जगत के सब दुःख विस्मृत हो जाते हैं।

भोजनोपरान्त उन भाई-बहिन ने उत्तम तत्त्वचर्चा की। स्वानुभूतिवाले उन दोनों भाई-बहिन द्वारा की गयी तत्त्वचर्चा अद्भुत थी।

हनुमान ने कहा—'बहिन सीता! पूर्व में तुमने किसी मुनिराज का अवर्णवाद किया है, इसलिए ऐसा संकट उपस्थित हुआ है परन्तु अब जैनशासन के प्रताप से तुम्हारा संकट दूर होगा। देव-गुरु की अपार भक्ति तुम्हारे जीवन में भरी है।'

सीता कहती है—'हाँ भाई! जिनके प्रताप से आत्मा स्वानुभूति को प्राप्त हुआ, उनके उपकार की क्या बात! संसार की चाहे जैसी विकट परिस्थिति में भी स्वानुभूति के प्रताप से जीव को शान्ति रहती है।'

हनुमान कहते हैं—'वाह बहिन! तुम ऐसी स्वानुभूति से शोभित

हो रही है, तुम्हारे मुख से स्वानुभूति की चर्चा सुनकर मुझे आनन्द हो रहा है।'

'भाई! इस विकट वन में तू मुझे मेरा साधर्मी भाई मिला, मुझे तो मानो महान निधान मिला। तू चैतन्य की स्वानुभूतिवाला भाई मुझे मिला, इसलिए मैं अपने को धन्य मानती हूँ।'

तब हनुमान ने कहा—'अरे! रावण जैसा राजा, जैनधर्म का ज्ञाता होने पर भी अभी विषयान्ध होकर विवेक भूल गया है और दुष्कार्य में वर्त रहा है।'

सीता ने कहा—'भाई! तेरी बात सत्य है परन्तु थोड़े समय पश्चात् वही रावण तीर्थंकर होकर जगत का उद्धार करेगा—वहाँ किससे करें राग और किसका करें द्वेष?'

हनुमान ने कहा—'अरे! जीव के परिणाम की कैसी विचित्रता है! बहिन! जो रावण अभी तुम्हारा हरण करके लाया है, वही रावण भविष्य में तुम्हारा पुत्र होगा और फिर भविष्य में वही रावण जब तीर्थंकर होगा, तब तुम उनके गणधर बनोगी।'

सीता ने कहा—'वास्तव में जीव का स्वभाव कोई अलौकिक है, वह जागे तब परभाव तोड़कर मोक्ष को साधने में देरी नहीं लगती।'

वाह रे वाह! जैनधर्म कैसा अद्भुत है! वह कहीं राग-द्वेष होने नहीं देता; क्षणिक परिणाम में ही जीव को नहीं अटकाता, परन्तु आत्मा की नित्यता समझाकर वीतरागता कराता है। वास्तव में मुमुक्षु सर्वत्र अपने वीतरागभाव का ही पोषण करता है।

(प्रिय पाठक! आपने सीता और हनुमान की यह चर्चा सुनी

न ? आप भी उतावले होकर रावण के प्रति क्रोध न करके, धीरज से अपने ज्ञान को जरा लम्बाकर भविष्य में देखोगे तो आपको रावण का कोई नया ही रूप दिखायी देगा—क्या दिखायी देगा ? सुनो ! सीता का जीव जब चक्रवर्ती होगा, तब यही रावण का जीव उसका पुत्र होगा और लक्ष्मण का जीव रावण का भाई होगा। पश्चात् जरा आगे ज्ञान को लम्बाकर देखने से वही रावण का आत्मा तीर्थंकर होगा और तब सीता का आत्मा उसका गणधर होगा ! बोलो, अब तुम किसके प्रति द्वेष करोगे ? जिस प्रकार रावण का जीव कुशीलादिरूप विराधना के भाव छोड़कर आराधना के भाव प्राप्त करेगा और मोक्ष प्राप्त करेगा, उसी प्रकार तुम भी अपने आत्मा को आराधना में जोड़कर मुक्ति के पन्थ में प्रयाण करो।)

— इस प्रकार सीता के साथ आनन्दमय धर्मचर्चा के पश्चात् हनुमान जाने के लिये तैयार हुए और सीता को कहा—'हे देवी ! चलो मेरे साथ, तुमको राम के पास ले जाऊँ !'

परन्तु सीता ने कहा—'रावण तो कायर की भाँति चोरी-चुपके मुझे उठा लाया था, परन्तु हे वीरा ! राम-लक्ष्मण तो अपने पराक्रम से रावण को पराजित कर मुझे ले जायेंगे, इसलिए चोरी-छुपे भागना उचित नहीं है। भाई ! तू जाकर राम को मेरे समस्त समाचार सुनाना और कहना कि मुझे लेने के लिये जल्दी आवें। तेरी माता अंजनी बहिन को भी मेरी याद कहना। हे हनुमान ! तुमने यहाँ आकर मेरे प्रति भाई जैसा उपकार किया है ! तू मेरा भाई ही है ! वन में हमने गुप्ति-सुगप्ति मुनिवरों को आहार दिया था, देशभूषण-कुलभूषण मुनिवरों का उपसर्ग मिटाकर भक्ति की थी—ये सब प्रसंग याद करके राम को मेरे कुशल समाचार कहना... और मेरी यह निशानी

राम को देना'—ऐसा कहकर गद्‌गद सीता ने सिर का चूड़ामणि उतारकर हनुमान के हाथ में दिया। वह रोते-रोते कहने लगी—'भाई हनुमान ! अब तू शीघ्र यहाँ से विदा हो क्योंकि वहाँ राम इन्तजार कर रहे होंगे और यहाँ रावण को खबर लगते ही वह तुझे पकड़ने का उद्यम करेगा, इसलिए अब विलम्ब करना उचित नहीं है...'

'हे माता ! राम-लक्ष्मणसहित हम शीघ्र ही यहाँ आकर तुम्हें छुड़ायेंगे, तुम धैर्य रखना। अपने को सदा पंच परमेष्ठी शरण है-इस प्रकार हनुमान ने सीता को धैर्य बँधाकर वहाँ से विदा ली। (राम की अँगूठी सीता ने अपनी अंगुली में पहनी' उस अँगूठी के स्पर्श से उसे राम के साक्षात् मिलन जैसा ही उसी प्रकार सुख हुआ, जिस प्रकार सम्यक्त्व के स्पर्श से भव्य जीव को मोक्षवत् सुख होता है।)

सीता के मिलन से हनुमान को अपने जीवन का एक महान कार्य करने का सन्तोष हुआ। अहा ! संकट में पड़े हुए साधर्मी की सहायता के लिये कुदरत जब आवाज लगाती हो, तब धर्मात्मा से कैसे रहा जाये ! संकट के समय एक साधर्मी-सती धर्मात्मा की सेवा करते हुए उसका हृदय धर्मप्रेम से उल्लसित होने लगा। उन्हें अपनी अंजनी माता के जीवनप्रसंग एक के बाद एक नयनों के समक्ष तैरने लगे। हनुमान के अद्‌भुतरूप को देखकर लंका की स्त्रियाँ आश्चर्य को प्राप्त होने लगीं—अरे ! यह कामदेव जैसा पुरुष कौन है और कहाँ से आया है ! ऐसा प्रतापी पुरुष लंका में कहाँ से आया ?

★ ★ ★

दूसरी ओर, हनुमान द्वारा अपमानित हुई रावण की स्त्रियाँ रोते-रोते रावण के पास गयीं और हनुमान सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर क्रोधपूर्वक रावण ने हनुमान को पकड़

लाने के लिये सेना को भेज दिया परन्तु अकेले हनुमान ने सेना को भगा दिया और लंका नगरी में हाहाकार मचा दिया। अन्त में इन्द्रजीत ने आकर हनुमान को पकड़ लिया और बाँधकर रावण के पास लाया।

हनुमान को देखते ही आश्चर्यचकित होकर सभाजन कहने लगे—'अहो, हनुमान ! तुम तो रावण के विशिष्ट मान्यता प्राप्त सुभट हो, रावण जैसे महाराजा की सेवा छोड़कर तुम्हें वन में भटकनेवाले राम की सेवा करने की क्या सूझी ? तुम केशरी सिंह के बालक होकर सियाल की शरण क्यों गये ?'

हनुमान ने कहा—'रावण परस्त्री लम्पट होकर दुष्ट कार्य कर रहा है। इसने महासती सीता का अपहरण किया है, इसलिए अब इसका विनाश निकट आया है। तुम्हें राम-लक्ष्मण के पराक्रम की खबर नहीं है। वे थोड़े ही दिन में सेनासहित यहाँ आ पहुँचेंगे और रावण को मारकर सीता को ले जायेंगे। आश्चर्य की बात है कि इस सभा में बैठनेवाले तुम सब न्यायवान और महाबुद्धिमान होने पर भी रावण को इस दुष्ट कार्य से रोकते क्यों नहीं हो ?'

उन्होंने रावण को सम्बोधन करते हुए कहा—'हे महाराजा रावण ! यदि अभी भी तुम्हें सद्बुद्धि सूझती है तो राम के आश्रय में जाओ और सम्मानसहित सीता को वापिस सौंप दो ! तुम्हारे महान कुल में तो बहुत प्रतापवन्त राजा मोक्षगामी हुए हैं, ऐसे महान कुल के वंश में पाप द्वारा तुम कलंक क्यों लगा रहे हो ? तुम्हारे इस निन्द्य कर्म से तो राक्षस वंश का नाश हो जायेगा, इसलिए अभी चेत जाओ और सीता को वापिस सौंपकर राम की शरण ग्रहण करो। यही बात करने के लिये मैं लंका में आया हूँ।'

हनुमान की बात सुनकर रावण ने क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! यह हनुमान भूमिगोचरियों का (राम का) दूत बनकर आया है, इसे मरण का भय नहीं है। इसे बाँध दो और अपमानित करके नगर में घुमाओ।'

इस प्रकार रावण की आज्ञा होने पर सेवक हनुमान को बाँधकर नगर में घुमा रहे थे... तभी हनुमान ने एकदम छलाँग लगाकर बन्धन तोड़ दिये। जिस प्रकार शुक्लध्यान द्वारा मुनिराज बन्धन तोड़कर मोक्ष में जाते हैं; उसी प्रकार विद्या द्वारा हनुमानजी बन्धन तोड़कर आकाश में उछले... और पैर के वज्र प्रहार द्वारा रावण के महल तोड़ डाले। जिस प्रकार वज्र द्वारा पर्वत टूट जाते हैं, उसी प्रकार हनुमान के वज्र प्रहार द्वारा लंका नगरी तहस-नहस हो गयी। हनुमान को रावण ने बाँधा है—यह जानकर सीता रुदन कर रही थी, तभी आकाश में हनुमान को उड़ते देखा, इसलिए प्रसन्न होकर दूर से उसे आशीष देने लगी। पुण्यप्रतापी हनुमान विद्याबल से आकाश में उड़ते-उड़ते शीघ्र ही किष्कन्धानगरी में राम के समीप आ पहुँचे।

★ ★ ★

सीता को खोजकर हनुमान आ पहुँचे हैं, इसलिए किष्कन्धानगरी में हर्ष व्याप्त हो गया। सीता की चिन्ता में जिनका मुख मुरझा गया है, ऐसे श्री राम, हनुमान से सीता का वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुए। राम की आँखों में से आँसू गिर रहे थे; हनुमान को देखते ही उन्होंने पूछा—'हे मित्र! सत्य कहो, क्या मेरी सीता जीवित है?'

हनुमान ने कहा—'हाँ, देव! वह जीवित है और तुम्हारे ध्यान में दिन व्यतीत कर रही हैं। निशानी के रूप में उन्होंने यह चूड़ामणि मुझे दिया है। आपके विरह में उनकी आँख में तो मानो चातुर्मास

लगा है; वे किसी से बात भी नहीं करतीं, रावण के सन्मुख भी नहीं देखतीं। ग्यारह दिनों से उन्होंने कुछ खाया-पीया नहीं था; आपके कुशल समाचार सुनने के पश्चात् आज ही उन्होंने भोजन किया है, इसलिए अब उन्हें वापिस लाने का उपाय शीघ्र करें।'

यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने बड़े सैन्य सहित (कार्तिक कृष्ण पंचमी को) लंका की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक शुभ शकुन हुए।

★ ★ ★

राम की सेना लंका के निकट पहुँची, तभी लंका में खलबलाहट मच गयी। भाई विभीषण ने रावण को बहुत समझाया परन्तु वह नहीं माना और राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध के लिये चल पड़ा। धर्मात्मा विभीषण अपने भाई के अन्याय को नहीं देख सका, इसलिए वह रावण को छोड़कर राम के निकट चला गया।

रावण और राम-लक्ष्मण के बीच महायुद्ध में हनुमान ने बहुत पराक्रम किया और राक्षसवंशी अनेक राजाओं को पराजित कर दिया। देखो, जीव के परिणामों की विचित्रता! जिन हनुमान ने पहले युद्ध में विजय के लिये सहायता करके रावण को बचाया था, वही अभी रावण के सन्मुख युद्ध कर रहे हैं। युद्ध में रावण की शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण एकदम मूर्च्छित हो गये... तब हनुमान लंका से अयोध्या आये और विशल्याकुँवरी को विमान में बैठाकर लंका ले आये। विशल्या के नजदीक आते ही लक्ष्मण के शरीर में चेतना आने लगी और रावण द्वारा मारी हुई दैवीशक्ति दूर हो गयी। (वह विशल्या आगे चलकर लक्ष्मण की पटरानी बनी)।

★ ★ ★

रावण के महल में शान्तिनाथ भगवान का जिनालय था। उसकी शोभा अद्भुत थी। अपना भाई तथा पुत्र पकड़े गये हैं और लक्ष्मण स्वस्थ हो गये हैं, इससे रावण को युद्ध जीतने की चिन्ता हो गयी; इसलिए भगवान शान्तिनाथ के मन्दिर में बैठकर वह बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा। फाल्गुन मास की अष्टाह्निका आयी, रावण की आज्ञा से लंका के लोगों ने इन महान दिवसों में सिद्धचक्र पूजन का आयोजन किया और आठ दिन तक आरम्भ छोड़कर युद्ध बन्द रखा। सब व्रत, उपवास, जिनपूजन में तत्पर हुए। राजा रावण विद्या सिद्ध करने के लिये युद्ध की चिन्ता छोड़कर, धैर्यपूर्वक प्रभु के सन्मुख अद्भुत पूजा करने लगा।

इस समय राम की छावनी में वानर वंशी राजाओं ने विचार किया कि पूजा में उपद्रव करके रावण को क्रोध उत्पन्न करना चाहिए, जिससे उसे विद्या सिद्ध न हो, क्योंकि क्रोध के द्वारा विद्या सिद्ध नहीं होती। तथा अभी लंका को जीत लेने का उचित समय भी है क्योंकि रावण विद्या सिद्ध करने के लिये बैठा है, इसलिए वह अभी युद्ध नहीं करेगा; किन्तु राम ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और कहा—'अरे, रावण जिनमन्दिर में विद्या साधने बैठा है, उसे उपद्रव कैसे किया जाए! ऐसी अन्याय प्रवृत्ति सज्जनों को शोभा नहीं देती।'

★ ★ ★

विद्या सिद्ध करके रावण भयानक युद्ध के लिये तैयार हुआ। मन्दोदरी ने उसे युद्ध न करने और सीता को वापिस सौंप देने के लिये बहुत समझाया, किन्तु रावण ने उसकी बात नहीं मानी। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को थका दिया; अन्त में रावण ने चक्र चलाया परन्तु उसी चक्र द्वारा लक्ष्मण ने रावण का सिरच्छेद कर दिया। इस

युद्ध में हनुमानजी ने भी बहुत पराक्रम दर्शाया था। यद्यपि राम और हनुमान जैसे धर्मात्माओं को युद्ध किंचित् भी प्रिय नहीं था परन्तु राजभोग के बीच रहे हुए धर्मात्माओं को उस प्रकार की कषाय परिणति का सम्पूर्ण छेद न हुआ होने से, सीता को वापिस प्राप्त करने के लिये ऐसा युद्ध करना पड़ा। रावण की मृत्यु होते ही युद्ध बन्द हो गया। राम ने मन्दोदरी आदि को धैर्य प्रदान किया। रावण का अन्तिम संस्कार कराया तथा इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, मेघनाथ इत्यादि को मुक्त कर दिया। सत्य ही है कि सत्पुरुष बैर को कभी लम्बाते नहीं हैं।

एक ओर युद्ध पूरा हुआ तथा दूसरी ओर उसी दिन अनन्तवीर्य मुनिराज छप्पन हजार मुनियों के संघसहित लंका में पधारे और उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसी समय दूसरे द्वीप में जन्मे हुए एक तीर्थंकर का जन्माभिषेक करके देव लंका में अनन्तवीर्य केवली के दर्शन करने आये और केवलज्ञान का महान उत्सव किया। भगवान ने संसार की चारों गतियों के दुःखों का वर्णन करके मोक्षसुख साधने का उपदेश दिया। अहो! हित-मधुर वाणी में उनका धर्मोपदेश सुनकर रावण के भाई कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजीत इत्यादि पुत्रों ने और मन्दोदरी इत्यादि रानियों ने संसार छोड़कर दीक्षा अंगीकार कर ली। उस दिन मन्दोदरी के साथ दूसरी अड़तालीस हजार स्त्रियाँ आर्यिका हुईं। वाह, कैसा धर्म काल!

श्री राम-लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया। राम और सीता का मिलाप हुआ। जिस प्रकार अनुभूति में सम्यक्त्व के साथ शान्ति का मिलान होता है और आतमराम आनन्दित होता है; उसी प्रकार राम और सीता का मिलन हुआ और दोनों के नेत्रों में से आनन्दमय अश्रु

झरने लगे। देव भी यह दृश्य देखकर प्रसन्न हुए—धन्य सती सीता! धन्य इनका शील और धन्य इनका ध्येय! लक्ष्मण ने आकर भवसागर की तरणहारी और मोक्ष की साधिका उन सीता को वन्दन किया। भाई भामण्डल भी अपनी बहिन को देखकर आनन्दित हुआ और जब हनुमानजी ने आकर सीता को वन्दन किया, तब अत्यन्त प्रसन्नता से सीता ने कहा—'अहो, वीर! तुम तो मेरे धर्म के भाई हो, तुमने ही यहाँ आकर मुझे राम का सन्देश देकर जिलाया है। भाई हो तो ऐसा हो!' इस प्रकार सीताजी ने हनुमान के प्रति बहुत वात्सल्य प्रदर्शित किया। वाह, साधर्मी प्रेम! तेरी महिमा तो सगे भाई-बहिन से भी अधिक है।

सीता सहित श्री राम, रावण के महल में शान्तिनाथ प्रभु के मन्दिर में आाये और प्रभु के दर्शन करके शान्तचित्त से ध्यान किया, सामायिक की। अनेक प्रकार से जिनेश्वर शान्तिनाथ की स्तुति की। अहो प्रभु! आप राग-द्वेषरहित परम शान्तदशा को प्राप्त हुए हो, जिसमें परभाव का आश्रय नहीं, केवल निजभाव का ही आश्रय है—ऐसी शिवपुरी को आपने साध लिया है। राम के साथ देवी जानकी भी भावभीने चित्त से वीणावत् मधुर स्वर में प्रभु की स्तुति करने लगीं। लक्ष्मण, विशल्या, हनुमान, भामण्डल इत्यादि भी अत्यधिक आनन्द से जिनभक्ति में भाग लेने लगे और मोर की भाँति नाच उठे! अहा, रावण की लंका में राम, हनुमान जैसे चरमशरीरी जीवों द्वारा शान्तिनाथ भगवान की अद्भुत भक्ति का यह प्रसंग देखकर, जिनमहिमा द्वारा अनेक जीव सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। वास्तव में जीवों को जैनधर्म एक ही शरण और शान्ति प्रदाता है। धन्य जैनधर्म और धन्य इसके सेवक।

तत्पश्चात् कुछ समय लंका में रहकर श्री राम-लक्ष्मण-सीता इत्यादि सब अयोध्यापुरी आ पहुँचे। हनुमान इत्यादि भी साथ ही थे। अयोध्यानगरी में आनन्द-आनन्द छा गया। कुछ दिनों के बाद हनुमान ने अपनी नगरी में जाने के लिये विदा माँगते हुए श्री राम से कहा—'हे राम! आप हमारे परम मित्र हो। यद्यपि आप का सङ्ग छोड़ना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता परन्तु हे देव! जैसे, आपके विरह में कौशल्या माता बेचैन थीं; वैसे ही मेरी माता अञ्जना भी मेरे विरह में बेचैन होंगी और प्रतिदिन मुझे याद करती होंगी, इसलिए मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।'

हनुमान के वचन सुनकर सीता ने कहा—'बन्धु हनुमान! तुम मेरे भाई हो.... लंका में रावण की अशोकवाटिका में आकर तुमने मुझे रघुवीर के कुशल समाचार दिये थे और ग्यारह दिन के उपवास के पारणे में मुझे भोजन कराया था, तब से तुम मेरे धर्म भाई बने हो। मैंने तुम्हारी अञ्जना माता को कभी नहीं देखा है। मैं अञ्जना माता को अपनी नजरों से देखना चाहती हूँ; इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगी।'

हनुमान ने कहा—'वाह बहिन! आपके समान सती धर्मात्मा हमारे घर पधारे... यह तो महाभाग्य की बात है। माँ अञ्जना आपको देखकर अति प्रसन्न होंगी।'

दो सखी : सीता और अंजना का मिलन

इस प्रकार हनुमान, सीताजी को साथ लेकर कर्णकुण्डलनगरी पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर सीताजी का भव्य सम्मान किया गया। अञ्जना माता को देखते ही सीता उनसे पुत्री के समान गले लग गयी। हनुमान ने भी माता को वन्दन करके कहा –

‘हे माता! यह महासती सीताजी अयोध्या की राजरानी और मेरी धर्म बहिन हैं।’

अंजना ने कहा – ‘वाह बेटी सीता! तुझे देखकर बहुत आनन्द हुआ’ – ऐसा कहती हुई अंजना ने सीता और हनुमान दोनों के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। सभी एक दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सीता ने कहा – ‘माँ! आप मेरी भी माता हो। यह हनुमान मेरा धर्म भाई है; इसने मुझ पर बहुत उपकार किया है।’

अंजना ने कहा – ‘बेटी सीता! साधर्मी भाई–बहिन संकट के समय में एक–दूसरे की सहायता करें, इसमें क्या आश्चर्य है? उसमें भी हनुमान का हृदय तो अति कोमल है; वह स्वयं वन में जन्मा है न! अतः किसी का दुःख देख नहीं सकता, इसलिए सभी इसे ‘पर दुःख भंजक’ कहते हैं।’

सीता तो अपने भ्राता हनुमान के गुनगान सुनती–सुनती थकती भी नहीं थी। भाई की प्रशंसा बहिन को आनन्द उपजावे, इसमें क्या आश्चर्य है?

अंजना कहती है – ‘हे देवी सीता! तू भी धर्मात्मा है, तेरा शील जगत् में प्रसिद्ध है; तेरे जैसी गुणवान धर्मात्मा बहिन, हनुमान को मिली, यह तो प्रशंसनीय है। धर्मात्मा भाई–बहिन की ऐसी सरस जोड़ी देखकर मेरे हृदय को अत्यन्त शान्ति प्राप्त हुई है।’

सीता को यहाँ बहुत अच्छा लगता है, उन्हें अयोध्यानगरी की तो याद भी नहीं आती। वे माता अंजना के साथ बारम्बार आनन्द से धर्म चर्चा करती है। दोनों माँ–बेटी का हृदय दो सखियों के

समान एक-दूसरे के साथ खूब हिल-मिल गया है। सीता और अंजना, अंजना और सीता.... दोनों ने वनवास भुगता है, दोनों के जीवन में चित्र-विचित्र प्रसंग बने हैं, दोनों चरमशरीरी पुत्रों की माता हैं, दोनों जिनधर्म की परम भक्त हैं, दोनों सखियाँ महान् सती, धर्मात्मा और आत्मा की ज्ञाता हैं।

★ ★ ★

दोनों धर्म वत्सल माँ-पुत्री प्रतिदिन धर्मचर्चा करती थी। आईये! हम भी उनकी धर्मचर्चा में सहभागी बनें।

'माँ! अपना जैनधर्म कैसा महान है? संसार में संकट की परिस्थिति में जैनधर्म और सम्यग्दर्शन अपने को परम शरणरूप होता है' - सीताजी ने कहा।

'हाँ बेटी सीता! जीवन में सारभूत यही है। एक तो असारता से भरा हुआ यह संसार! और उसमें भी अपना (स्त्रियों का) जीवन... इसमें तो पद-पद पर कैसी-कैसी पराधीनता है! फिर भी ऐसी स्त्रीपर्याय में अपने को इस जैनधर्म की और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई, यह भी अपनी निकट भव्यता और परम सद्भाग्य है।'

'अहा माँ! आज आप जैसी धर्मात्मा माता के मिलन से मुझे जो परम आह्लाद हुआ है, उसकी क्या बात करूँ! चैतन्य की अद्भुतता और साधर्मी धर्मात्मा का संग, जगत् के सब दु:खों को भुला देते हैं और आत्मा का महान् आनन्द देते हैं। माता, वन में आपके साथ आपकी सखी बसन्तमाला रहती थी, वह कहाँ हैं?'

'देवी! उसने तो बालक हनुमान को उसके पिता को सौंपकर तुरन्त वैराग्यपूर्वक आर्यिका दीक्षा ले ली थी। मेरा वनवास देखकर

उसे सांसारिक जीवन से एकदम विरक्तता आ गयी थी। हे सीता! मुझे भी उसके साथ ही दीक्षा लेने की परम उत्कण्ठा थी परन्तु इस हनुमान के स्नेहरूपी बन्धन को मैं तोड़ नहीं सकी, किन्तु अब मैंने निर्णय किया है कि जब तुम दीक्षा लेकर आर्यिका बनोगी, तब मैं भी संसार का स्नेह-बन्धन तोड़कर अवश्य आर्यिका दीक्षा अंगीकार करूँगी। आर्यिका का जीवन जीकर इस तुच्छ स्त्रीपर्याय का सदा के लिए अन्त करूँगी।'

'वाह माता! आपकी भावना अलौकिक है। अभी भी आपका जीवन संसार से विरक्त ही है। मैं भी उस धन्य घड़ी की प्रतीक्षा में हूँ कि जब संसार का स्नेह त्याग कर आर्यिका बनूँ।'

'देवी! धन्य है तुम्हारी भावना! हम इस स्त्रीपर्याय में केवलज्ञान और मुनिपद तो नहीं ले सकते, फिर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से हम भी पंच परमेष्ठी के मोक्ष-पन्थ में गमन तो कर ही सकते हैं।'

'हाँ माता! देखो, सम्यग्दर्शन भी कैसी महान् अलौकिक वस्तु है! अष्ट अंगों सहित सम्यक्त्व से आपका जीवन कैसा सुशोभित हो रहा है!'

'बेटी! सम्यक्त्व होने पर भी संसार के चित्र-विचित्र प्रसंगों में अनेक प्रकार के संक्लेशभाव आ जाते हैं, उससे भी पार होकर चैतन्य की शान्ति में लीन हो जाऊँ - ऐसी ही अब भावना है।'

'हाँ, माता! अब ऐसा प्रसंग बहुत दूर नहीं, आर्यिका होने की आपकी भावना शीघ्र ही पूरी होगी।'

इस प्रकार आनन्दपूर्वक चर्चा-वार्ता करते हुए कितने ही दिनों तक अंजना माता के साथ रहकर सीताजी वापस अयोध्या

पहुँच गयीं। हनुमान ने अपनी बहिन को बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में देकर अत्यन्त भावभीनी विदाई दी।

★ ★ ★

एक बार देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवन्त अयोध्या पधारे। वंशगिरि पर स्वयं ने जिनका उपसर्ग दूर किया था, उन भगवन्तों को अयोध्या पधारने पर राम-लक्ष्मण-सीताजी को बहुत आनन्द हुआ। त्रिलोकमण्डन हाथी पर बैठकर सब उनके दर्शन करने के लिए चल पड़े। भगवान की वाणी में अपने पूर्व भवों की बात सुनकर भरत को वैराग्य हुआ, इसलिए उन्होंने मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली; उनकी माता कैकेयी ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। भरत का पूर्व भव का मित्र त्रिलोकमण्डन हाथी भी वैराग्य को प्राप्त हुआ और उसने सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक के व्रत धारण किये।

★ ★ ★

मानो परमात्मा का ही वन-विहार

अहो! मोक्षमार्गी निर्ग्रन्थ मुनिराज, काया के प्रति उदासीन वर्तते हुए स्वरूप में लीन होकर आनन्द में झूलते हैं। **जैसे वन में वनराज सिंह विचरण करता है, वैसे मुनिराज विचरण करते है; मानो परमात्मा ही वन-विहार कर रहे हों** — ऐसे मुनि भगवन्त, भव का अन्त करके सिद्धदशा प्राप्त कर लें — इसमें क्या आश्चर्य है?

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वीतराग-विज्ञान, भाग ५, पृष्ठ ५५

सीता की अग्निपरीक्षा और दीक्षा

राम-लक्ष्मण अयोध्या में राज्य कर रहे हैं। अयोध्या की प्रजा दूसरे सब प्रकार से सुखी है परन्तु मानो कि पुण्य की अध्रुवता सिद्ध करती हो, ऐसी यह अफवाह घर-घर फैल रही है कि सीताजी रावण की लंका में बहुत दिन रही हैं और राम ने उन्हें वापस रख लिया है, यह ठीक नहीं किया है। इसका अनुकरण दूसरे दुष्ट जीव भी करने लगे हैं। नगरजनों द्वारा यह अपवाद सुनकर राम ने अपयश के भय से सती सीता का त्याग करके उन्हें वन में भेज दिया। रावण उठा ले गया था, उसकी अपेक्षा भी जब राम ने त्याग किया, उस समय सीता को बहुत वेदना हुई। वैराग्यवन्त धर्मात्मा सीता घोर जंगल में अकेली बैठी-बैठी रुदन कर रही है। पूर्व का कोई अशुभकर्म आया, वह फल दिखाकर क्षणमात्र में चला गया... और तुरन्त ही शुभयोग से व्रजजंघ राजा वहाँ आया, उसने सीता को धर्म की बड़ी बहिन रूप से रखा। सीताजी को लव-कुश पुत्र हुए; उन्होंने राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध किया; हनुमानजी इत्यादि सीताजी को वापस अयोध्या लेकर आये किन्तु राम ने सीताजी की अग्नि परीक्षा का आग्रह रखा। विशाल अग्निकुण्ड में पंच परमेष्ठी के स्मरणपूर्वक सीताजी ने छलांग लगा दी... और शील का महाप्रभाव जगत प्रसिद्ध हुआ। अग्नि के स्थान पर पानी हो गया... सीताजी के शील का ऐसा प्रभाव देखकर हनुमान इत्यादि बहुत प्रसन्न हुए।

संसार की ऐसी विचित्र स्थिति देखकर सीताजी महावैराग्य को प्राप्त हुईं और आर्यिका होने के लिये तत्पर हो गयीं। लव-कुश 'माँ.. माँ..' कहकर सीता के चरणों में लिपट गये। राम रुदन करने

लगे। प्रजा रुदन करने लगी परन्तु अब सीता को संसार का मोह नहीं रहा था... बस, वे तो कोमल केश का लोंच करके संसार छोड़कर आर्यिका हुई... भगवती माता श्वेत साड़ी में परिणाम की शुद्धतासहित शोभायमान हो उठी।*

★ ★ ★

** **नोट :** प्रिय पाठकों! सीताजी पर लोकापवाद; राम द्वारा कृतान्तवक्र सेनापति के माध्यम से तीर्थयात्रा के बहाने उन्हें जंगल में छुड़वाना; राजा व्रजजंघ का आना; लव-कुश का जन्म; लव-कुश का राम-लक्ष्मण के साथ भयंकर युद्ध और युद्ध में अपनी वीरता का परिचय; सीताजी का अयोध्या आना; अग्नि परीक्षा एवं तत्पश्चात् रामचन्द्रजी का सीताजी को राजमहल में पधारने का अनुरोध करना किन्तु विरक्त सीताजी द्वारा आर्यिका व्रत अंगीकार करने का भाववाही सम्पूर्ण वर्णन पद्मपुराण में उपलब्ध है, जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि उक्त सम्पूर्ण वर्णन को जानने के लिये इस पुराण का अवश्य स्वाध्याय करें।* *–अनुवादक / सम्पादक*

अंजना का वैराग्य और दीक्षा

हनुमान ने श्रीपुरनगरी जाकर अंजना माता को सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। सीताजी का वनवास, अग्निपरीक्षा, शील का प्रभाव—यह बात सुनकर अपनी एक धर्म सखी का ऐसा प्रभाव देखकर अंजना प्रसन्न हुई, परन्तु जहाँ हनुमान ने कहा कि सीताजी ने आर्यिका दीक्षा अंगीकार कर ली है... यह सुनते ही अंजना का चित्त संसार से उदास हो गया... वे विचारने लगी—वाह सीता! तूने उत्तम मार्ग लिया... जीवन में सुख-दुःख के बहुत प्रसंगों के मध्य भी धैर्य रखकर तुमने आत्मा की साधना की और अन्त में आर्यिका हुई। वाह, बहिन! धन्य है तुम्हें! मैं भी तुम्हारी तरह दीक्षा लूँगी। उन्होंने हनुमान से कहा—'बेटा हनुमान! सीताजी ने दीक्षा ली है, उसी प्रकार मैं भी अब दीक्षा लेकर आर्यिका होना चाहती हूँ। संसार में बहुत सुख-दुःख देखे; अब तो राग-द्वेषरहित चैतन्यपद को साधकर शीघ्र इस संसार से छूटना है।

बेटा! मुझे संसार में एकमात्र तेरा मोह था, तेरा राग मैं त्याग नहीं सकती थी परन्तु अब जैसे सीता ने लव-कुश को छोड़ा है, इसी प्रकार मैं भी तुझे छोड़कर आर्यिका होऊँगी। मैंने पहले से निश्चय किया था कि जब सीताजी आर्यिका होंगी, तब मैं भी आर्यिका होऊँगी। वह धन्य घड़ी आज आ पहुँची है। इसलिए बेटा हनु! तू मुझे दीक्षा ग्रहण की आज्ञा दे!'

हनुमान का मन सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग देखा, तब से एकदम वैराग्ययुक्त हो गया था। माता की वैराग्यभरी बात सुनकर तुरन्त उन्होंने अनुमोदना की और कहा—'धन्य माता! आपका विचार बहुत उत्तम है; पहले से ही आपने मुझे वैराग्य का

अमृत पिलाया है... तो मैं आपके वैराग्य को नहीं रोकूँगा। हे माता! इस संसार में प्रीति, अप्रीति में कहीं शान्ति नहीं है; शान्ति तो चैतन्यधाम में है; उसे जाननेवाली आप प्रसन्नता से आर्यिका होवें; मैं आपको नहीं रोकूँगा, मैं भी थोड़े ही समय में इस असार संसार का त्याग करके मोक्ष को साधूँगा।'

—इस प्रकार कहकर हनुमान ने, अपनी माता की दीक्षा का महान उत्सव किया। सीताजी की भाँति अंजना सती भी आर्यिकारूप से शोभित हो उठीं। वाह! धन्य दोनों सखियाँ!!

★ ★ ★

मुनिराज और सर्वज्ञ में भेद नहीं

मुनिराज इस प्रकार परिणमित हो गये हैं, **मानो वीतरागता की मूर्ति हों! राग-द्वेष के अंशरहित मात्र वीतरागता की मूर्ति हैं मुनिराज!** मुनि को तो तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हुआ है, उन मुनिराज को शान्ति का सागर उछलता है। भगवान आत्मा स्वभाव से वीतरागमूर्ति है और **मुनिराज तो पर्याय में वीतराग की मूर्ति हैं।** श्री नियमसार के कलश में तो कहा है कि अरेरे! हम जड़मति हैं कि मुनिराज में और सर्वज्ञ में भेद मानते हैं। **अहाहा! मुनिराज तो मानों साक्षात् वीतराग की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं; उन्हें मुनि कहते हैं।**

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, ८९२, पृष्ठ २०४

हनुमानजी की मेरुयात्रा और वैराग्य

श्रीपुर अथवा कर्णकुण्डल नगर में पवनपुत्र राजा हनुमान आनन्द से राज्य करते हैं; अन्तर में 'सदन निवासी तदपि उदासी' ऐसी दशा वर्त रही है। माता अंजना की दीक्षा के पश्चात् हनुमान का चित्त संसार में कहीं नहीं लगता। गमनगामित्व इत्यादि अनेक विद्याएँ, महान ऋद्धियाँ, विमान, सुन्दर बाग-बगीचे, महल, राजपरिवार, इन सबके बीच रहने पर भी उनकी चेतना अपने इष्ट ध्येय को कभी चूकती नहीं है।

बसन्त ऋतु खिल उठी है... जैसे मुनिराज के अन्तर में रत्नत्रय का बगीचा खिल उठे; उसी प्रकार बाग-बगीचे फल-फूल से खिल उठे हैं। अन्य संसारी भोगासक्त जीव तो बाग-बगीचे में केलि करने गये, किन्तु जिनका चित्त जिनभक्ति से भींगा हुआ है और जिनके अन्तर में वैराग्य के पुष्प महक रहे हैं—ऐसे हनुमानजी को तो मेरु तीर्थ की वन्दना की भावना जागृत हुई। अत्यन्त हर्षपूर्वक रानियों को साथ लेकर वे सुमेरुपर्वत की ओर चल पड़े। हजारों विद्याधर राजा भी उनके साथ यात्रा करने चल दिये। अहा! हनुमान का संघ तीर्थयात्रा करने आकाशमार्ग से मेरु की ओर जा रहा है; मार्ग में अनेक दिव्य जिनालय और मुनियों के दर्शन करते-करते सबको आनन्द हो रहा है। बीच में भरतक्षेत्र के पश्चात् हिमवत् और हरिक्षेत्र आये (कि जहाँ जुगलिया जीवों की भोगभूमि है) तथा हिम, महाहिम और निषध ये तीन महापर्वत आये, इन तीनों कुलाचलों के अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करके आनन्द करते-करते सब मेरुपर्वत पर आ पहुँचे। अहा, जिन पर इन्द्रों ने अनन्त तीर्थंकरों का जन्माभिषेक किया है, जहाँ से अनन्त मुनिवर मोक्ष

को प्राप्त हुए हैं, जिन पर शाश्वत् रत्नमयी जिनबिम्ब सदा ही विराजमान हैं, ऋद्धिधारी मुनिश्वर भी यात्रा के लिये आकर जहाँ आत्मा का ध्यान करते हैं—ऐसे इस शाश्वत् तीर्थ की अद्‌भुत शोभा देखकर हनुमान को जो महान आनन्द हुआ, उसकी क्या बात! अरे, दूर-दूर से जिस तीर्थ का नाम सुनते हुए भी अपना चित्त भक्ति से दर्शन के लिये उल्लसित होता है, उस तीर्थ के साक्षात् दर्शन करने से जो हर्ष हो, उसकी क्या बात!—मात्र एक आत्मानुभूति के अतिरिक्त जगत में जिनवरदर्शन जैसा आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं है। हनुमानजी सबको मेरु तीर्थ की दिव्य शोभा बतलाते हैं। जिनवरदेव की अपार महिमा समझाते हैं और बारम्बार जिनवर समान निजस्वरूप के ध्यान की प्रेरणा जागृत करते हैं।

सुमेरुभूमि में सबसे पहले भद्रशाल वन है, उसमें सोलह शाश्वत् जिनालय हैं; पश्चात् ऊँचे जाने पर नन्दनवन तथा सोमनश वन आता है, वहाँ भी सोलह-सोलह अकृत्रिम मन्दिर हैं, उन मन्दिरों की अद्‌भुत शोभा देखने पर आश्चर्य होता है और उनमें विराजमान भगवान की वीतरागता देखने पर तो आश्चर्य से भी पार ऐसी चैतन्यवृत्तियाँ जाग उठती हैं। ऐसे तीनों वनों में आनन्द से दर्शन करके, जय-जयकार करते हुए सभी मेरु के ऊपर के चौथे पाण्डुकवन में आये। कितने ही देव भी हनुमानजी के साथ मेरु की यात्रा में भाग ले रहे हैं।

हनुमानजी सबको बताते हैं—'देखो! यह स्फटिक की पाण्डुकशिला! यह महापूज्य है; यहाँ भरतक्षेत्र के तीर्थंकर भगवन्तों का जन्माभिषेक होता है, इसलिए यह कल्याणक तीर्थभूमि है। अनन्त मुनिवर यहाँ से मोक्ष पधारे हैं, इसलिए यह शाश्वत् सिद्धक्षेत्र

भी है। यहाँ परम अद्भुत जिनालयों में जगमगाहट कर रहे रत्नमय जिनबिम्ब मानो केवलज्ञान खिला हो, ऐसे सुशोभित हो रहे हैं और आत्मा के पूर्ण स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। चँवर, छत्र, भामण्डल इत्यादि की शोभा से इस पाण्डुकवन के मन्दिर मानो मेरुपर्वत का रत्नजड़ित मुकुट हो! ऐसा शोभता है।

(पाठकगण! अभी हनुमानजी इत्यादि जिस स्थान की यात्रा कर रहे हैं, वह कितना ऊँचा है? खबर है? सुनो, मेरुपर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, उसमें ऊपर के भाग में पाण्डुकवन है। सूर्य-चन्द्र तो पूरे हजार योजन ऊँचे नहीं हैं। इन सूर्य-चन्द्र की अपेक्षा लगभग 99 हजार योजन ऊँचे (अर्थात् लगभग चालीस करोड़ मील ऊँचे) अभी अपने कथानायक आनन्द से यात्रा कर रहे हैं।

हनुमान को और समस्त विद्याधरों को मन्दिरों के दर्शनों से अत्यन्त हर्ष हुआ; बहुत भाव से जिनगुण गाते-गाते मन्दिरों की प्रदक्षिणा की। जैसे सूर्य-चन्द्र मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं; उसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी हनुमान इत्यादि एक लाख योजन जितनी ऊँचाईवाले मेरु की प्रदक्षिणा करने लगे; बारम्बार दर्शन करने लगे; प्रभु की वीतरागता की और सर्वज्ञता की महिमा करने लगे; पश्चात् सबने कल्पवृक्षों के पुष्पों और रत्नों के अर्घ्य द्वारा महान विनय से पूजन किया।

अहा, मेरु जैसा महातीर्थ, जहाँ सर्वज्ञ वीतराग जैसे पूज्य देव और जहाँ हनुमान जैसे चरमशरीरी साधक पुजारी-उस महान पूजा की क्या बात करना! बहुत देव और विद्याधर आश्चर्य को प्राप्त होकर जैनधर्म की महिमा से सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। सबके हृदय और नेत्र हर्ष से खिल रहे थे। पूजन के पश्चात् हाथ में वीणा लेकर

हनुमानजी ने अद्भुत भक्ति से जिनगुण गाये... अप्सराएँ भी भक्ति से नाचने लगीं। मानों कि अब वीतराग होते-होते बाकी रहा हुआ सब शुभराग यहाँ बिखेर देते हों!—इस प्रकार हनुमानजी ने बहुत-बहुत भक्ति की... देहभाव से पार होकर आत्मभावों में तन्मयता से होती हुई ऐसी अद्भुत भक्ति ऐसे साधकों को ही होती है। अहो! ऐसी जिनभक्ति देखनेवालों का भी जन्म सफल हो गया। वाह रे वाह, हनुमान! तुम्हारी अद्भुत जिनभक्ति! सब भव्य जीवों के रोमांच को उल्लसित करके मोक्ष का उत्साह जागृत करती है।

इस प्रकार मेरु तीर्थ पर बहुत भक्तिभावपूर्वक दर्शन-पूजन-भक्ति करके यात्रा की। अनेक मुनिवर वहाँ विराजमान थे, उनके भी दर्शन किये तथा उनके श्रीमुख से शुद्धात्मा का उपदेश सुना। हजारों जीव सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। ध्यानस्थ वीतरागी मुनियों को देखकर हनुमान को भी ध्यान की धुन जागृत हुई... और असंज्ञी होकर शान्त परिणाम द्वारा मुनियों के साथ बैठकर ध्यान करने लगे। एकाग्रता द्वारा आत्मा को ध्याते-ध्याते कोई परम अद्भुत निर्विकल्प आनन्द की अनुभूति की। अहा, उसकी क्या बात!!

इस प्रकार इष्ट ध्येय को पाकर और मुनिवरों के मंगल आशीष लेकर हनुमानजी मेरुपर्वत से वापस भरतक्षेत्र में स्वस्थान में आने के लिये विदा हुए। मार्ग में सुरदुन्दबी नामक पर्वत पर रात्रिवास किया। रात्रि को सब आनन्दपूर्वक तीर्थयात्रा की और जिनेन्द्र महिमा की चर्चा कर रहे थे... सर्वज्ञदेव का स्वरूप पहिचानने से आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप किस प्रकार पहिचाना जाता है! और राग तथा ज्ञान का भेदज्ञान होकर जीव को अपूर्व सम्यक्त्व किस प्रकार होता है? यह बात हनुमानजी अत्यन्त प्रमोदपूर्वक समझा

रहे थे। अँधियारी रात्रि में आकाश में तारे जगमगा रहे हैं... और अद्भुत अध्यात्म चर्चा में सभी मग्न हैं... तभी अचानक आकाश में घर्र.. घर्र.. घर्र.. आवाज करता हुआ एक तारा टूट गया और चारों ओर बिजली जैसा महान झपकारा हुआ।

अहा, बस तारा टूटने पर मानो हनुमानजी का संसार ही टूट गया हो; इसी प्रकार उस खिरते हुए तारे को देखकर हनुमानजी तुरन्त ही संसार से विरक्त हुए; क्षणभंगुरता देखकर वे देहादि संयोग की अनित्यता का चिन्तवन करने लगे; परम वैराग्य से बारह भावना भाने लगे। अरे! बिजली के चमकार जैसी इन संयोगों की और रागादि की क्षणभंगुरता में चैतन्यतत्त्व के अतिरिक्त दूसरा कौन शरण है ? यह राजपाट, भोगसामग्री कहीं जीव को शरण या साथीदार नहीं है; रत्नत्रय की पूर्णता वही शरणरूप, साथीदार है और अविनाशी मोक्षपद की प्रदाता है। हनुमानजी विचार करते हैं कि बस! अब मुझे शीघ्र रत्नत्रय की पूर्णता का उद्यम ही कर्तव्य है। हनुमान ने अपनी भावना मन्त्रियों को और रानियों को अवगत करा दी। उन्होंने कहा—'अब मैं यह संसार छोड़कर मुनि होना चाहता हूँ और इस संसार का छेद करके मोक्षपद प्राप्त करना चाहता हूँ। अरे रे! रागवश जीव संसार में दुःख भोगता है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं सुख नहीं है।

इसलिए न करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को
वीतराग होकर इस प्रकार वह भव्य भवसागर तिरे॥

अरे रे! मूढ़ जीव अल्प काल के विषय भोगों के पीछे अनन्त काल का दुःख भोगते हैं परन्तु विषयों में सुख कैसा ?—वह तो मात्र कल्पना है। देवलोक के भोगों में भी आत्मा का सुख नहीं है।

चैतन्यसुख, वह जीव का स्वभाव है और वह सुख सदाकाल टिकनेवाला है। अब मैं मुनि होकर आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता को साधूँगा।'

—महाराज हनुमान ऐसी भावनापूर्वक मुनि होने के लिये तैयार हुए। मन्त्रियों ने बहुत समझाया, रानियाँ रोने लगीं,—परन्तु यह तो हनुमान! इनकी दृढ़ता कौन डिगा सकता है? दृढ़चित्त हनुमान वैराग्यभावना से किंचित् नहीं डिगे... वह कहने लगे—'हे मन्त्रियों! हे रानियों! वृथा मोह छोड़ो। इन संसार के भयंकर दुःखों को क्या तुम नहीं जानते? मोहवश जीव ने संसार के अनन्त भवों में भ्रमण किया है। अब वश होओ! मुझे बहुत समय से मुनि होने की भावना तो थी, परन्तु मुझे एकमात्र मेरी माता का मोह था, उस मोह का बन्धन में नहीं छेद सकता था; अब जहाँ मेरी माता अंजना स्वयं ही मेरा मोह त्यागकर आर्यिका हो गयी हैं, तब मुझे भी मोह छूट गया है। मेरी माता मानो आवाज लगाकर मुझे वैराग्यमार्ग में बुला रही है। राग का एक कण भी अब हमें सुहाता नहीं है। हे रानियों! तुम शान्त होओ, रुदन करके व्यर्थ में आर्तध्यान द्वारा आत्मा का अहित मत करो... हे मन्त्रियों! तुम राजपुत्र का राज्याभिषेक करके राज्य व्यवस्था सम्हालो! हम तो अब जिनदीक्षा लेकर मुनिवरों के साथ रहेंगे और शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा को ध्याकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। एक क्षण का भी प्रमाद अब हमें पोसाता नहीं है।'

वाह रे वाह! जिनशासन का वीतरागी रहस्य जाननेवाले हनुमान राजा तो आभूषण उतारकर मुनि होने के लिये चल पड़े। रानियाँ भी हनुमान के उपदेश से प्रतिबोध प्राप्त करके खेद का परित्याग करके

आर्यिका दीक्षा हेतु तैयार हो गयीं। हजारों विद्याधर भी वैराग्य पाकर हनुमान के साथ ही दीक्षा लेने के लिये तैयार हुए... सिद्धालय में जिस मार्ग से जिनवर पधारे हैं, उसी मार्ग में जाने के लिये सब उद्यमी हुए। वाह रे वाह! धन्य वह प्रसंग!

निकट में ही ऋद्धिधारी चारण मुनिवरों का संघ विराजमान था। अहा, मोक्षमार्ग को साधनेवाले मुनिवरों की भव्य मण्डली विराजमान थी और आत्मध्यान में मस्त थी! वाह! मोक्ष-साधक मुमुक्षुओं की ऐसी वीतरागी मण्डली देखकर हनुमान के आनन्द का पार नहीं रहा। स्वयं भी उस मोक्षमण्डली में सम्मिलित हो जाने के लिये महा विनय से उन वीतरागी सन्तों को वन्दन करके हनुमानजी ने प्रार्थना करते हुए कहा—'हे प्रभु! मेरा चित्त इस संसार से सर्वथा विरक्त हुआ है और मैं शुद्ध आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिये जिनदीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ; इसलिए आप कृपा करके मुझे पारमेश्वरी दीक्षा प्रदान करें। प्रभु! अब इस भव दुःख से छूटकर मैं जन्म-मरणरहित परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ।'

मुनिवरों ने हनुमान के वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कहा—'अहो भव्य! तुमने उत्तम विचार किया... तुम चरमशरीरी भव्य हो; शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण करो। तुमने इस जगत को असार जाना है और परम सारभूत चैतन्यतत्त्व का तुमने अनुभव किया है। इसलिए अब तुम्हें मुनि होकर मोक्ष को साधने की कल्याणकारी बुद्धि उत्पन्न हुई, तुम्हें धन्य है! तुम शीघ्र ही मुनिधर्म अंगीकार करके अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित करो।

श्री मुनिवरों की आज्ञा प्राप्त कर हनुमानजी ने उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार किया; हार-मुकुट इत्यादि के साथ-साथ समस्त

वस्त्राभूषण का परित्याग कर दिया... अन्तर में से समस्त संसार का राग भी छोड़ दिया; इस प्रकार सर्वतः निर्ग्रन्थ होकर मोहबन्धन तोड़कर हनुमानजी मुनि हुए! पहले वे कामदेव होने से उनके शरीर का रूप तो अद्भुत था ही; और अब तो रत्नत्रय के सर्वोत्कृष्ट आभूषण से उनका आत्मा अतिशयरूप से शोभित हो उठा। अहा! उनका दिव्य वीतरागी रूप देखकर मोक्षलक्ष्मी भी प्रसन्न होकर दौड़ती हुई आयी! परन्तु शुद्धोपयोग में लीन उन मुनिराज को तो उस समय मोक्षलक्ष्मी की भी कहाँ आकाँक्षा थी! वे तो अपनी निर्विकल्प स्वानुभूति के सप्तम गुणस्थान में विराजमान थे।

★ ★ ★

मुनिराज का निज वैभव

सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प स्वाद आता है, परन्तु मुनि को उसका अतिप्रचुर आस्वादन होता है। समयसार की पाँचवी गाथा की टीका में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निजवैभव बतलाते हुए कहा है कि **कैसा है निजवैभव?** निरन्तर झरते हुए सुन्दर आनन्द की मुद्रा अर्थात् छापवाला अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन से आचार्य भगवान का निजवैभव उत्पन्न हुआ है। **आत्मवस्तु स्वभाव से तो वीतरागस्वरूप है, परन्तु मुनिराज को पर्याय में भी अतिशय वीतरागता-समताभाव है।**

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २५०

वाह! शुद्धोपयोगी सन्त हनुमान!!
आपको हमारा नमस्कार।

हनुमान के साथ दूसरे हजारों विद्याधर भी मुनि हुए; हजारों विद्याधर रानियाँ बन्धुमति आर्यिका के निकट जाकर आर्यिका हुईं; हनुमान की दीक्षा का महान वैराग्यप्रसंग देखकर अनेक प्रजाजनों ने श्रावक के व्रत अंगीकार किये, अनेक जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। इस प्रकार जैनशासन का महान उद्योत हुआ।

श्री शैल मुनिराज (हनुमान मुनिराज) शैलेश की अपेक्षा भी अचलरूप से चारित्र का पालन करने लगे; उनका अद्भुत वीतराग-चारित्र देखकर इन्द्र भी उन्हें नमस्कार करके उनकी प्रशंसा करते थे। राम-लक्ष्मण ने भी उन्हें वन्दन किया। हनुमान तो वीर थे ही; शुक्लध्यान के चक्र द्वारा 'महा-वीर' बनकर उन्होंने सर्वज्ञपद को साध लिया। केवलज्ञान के अहिंसा शस्त्र द्वारा समस्त लोकालोक को वश कर लिया। पश्चात् अरिहन्तपद में आकाश में विहार करते-करते, मांगी-तुंगी पधारे और वहाँ के तुंगीभद्रगिरि शिखर से मोक्षदशा प्रगट करके सिद्धपद को प्राप्त हुए... अभी भी वह मुक्त आत्मा अपने परम ज्ञान-आनन्दसहित बराबर तुंगीभद्र के ऊपर ठेठ ऊँचे लोकाग्र में सिद्धालय में अनन्त सिद्ध भगवन्तों के साथ विराजमान है। उन्हें नमस्कार हो!

जय हनुमान! जय सिद्ध भगवान!

वीर संवत् २४८३ में इस मांगी-तुंगी सिद्धिधाम की यात्रा गुरुदेव के साथ की थी, जिसका वर्णन मंगल तीर्थयात्रा पुस्तक में प्रकाशित है। जिसे यहाँ भी अविकलरूप से दिया जा रहा है।

राम-हनु-सुग्रीव-सुडील,
गव-गवाक्ष-नील-महानील;
कोडी निन्यानवे मुक्ति-प्रयान,
तुंगी गिरि वंदो धरी ध्यान,

—निर्वाणकाण्ड स्तोत्र

★ ★ ★

मुनिराज की क्रीड़ा और उनका क्रीड़ास्थल

जैसे कोई फूलों की सुगन्ध लेने बाग में जाए और वहाँ उनकी सौरभ में तल्लीन हो जाए, वैसे ही **मुनिराज राग की क्रीड़ा छोड़कर चैतन्य के बाग में खेलते-खेलते कर्म के फल का नाश करते हैं और अतीन्द्रिय आनन्द के फल का वेदन करते हैं, अनुभव करते हैं।** चैतन्य के बाग में क्रीड़ा करनेवाले मुनिराज को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र हुआ है, आनन्दादि अनन्त गुण खिल उठे हैं, अन्तर्निमग्नदशा तीव्र प्रगट हुई है। **अहा! मुनिपना बड़ी अद्‌भुत वस्तु है!**

भाई! बाग में हजारों पुष्पवृक्ष होते हैं, उसी प्रकार मुनिराज को भगवान आत्मा के बाग में अनन्त गुण निर्मल पर्यायोंरूप से खिल उठे हैं, क्योंकि चारित्र है ना! मुनिराज आत्म-उद्यान में खेलते-खेलते, लीला करते-करते, किञ्चित दुःख बिना अन्तर में अनन्त आनन्द की धारा में निमग्न रहकर कर्म के फल का नाश करते हैं। वास्तव में तो उस समय कर्मफल उत्पन्न ही नहीं होता, उसे 'नाश करते हैं' — ऐसा कहा जाता है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २०९

लेखक की प्रशस्ति

भगवान महावीर के २५०० वर्षीय निर्वाण महोत्सव के महान मंगल वर्ष में मोक्षगामी भगवान श्री हनुमानजी के पवित्र जीवन की इस आनन्दकारी कथा का लेखन, श्री वीरनाथ भगवान के दीक्षा कल्याणक के मंगल दिन (वीर संवत् २५०१ के कार्तिक कृष्ण दशमी) पूज्य श्री कहान गुरु के मंगल सानिध्य में मुनिपद की उत्तम भावनाओंपूर्वक समाप्त हुआ।

मोक्षगामी जीव की यह मंगल गाथा जो भावपूर्वक पढ़ेगा, सुनेगा उसके सर्व विघ्न (मिथ्यात्व-राग-द्वेषादि) दूर होंगे... और जिनधर्म की आराधना द्वारा उसका कल्याण होगा।

जैनम् जयतु शासनम्!

आतम-राम की ज्ञानचेतना

राज्याभिषेक... या वनवास;
सीता का वियोग... या उसकी प्राप्ति
लक्ष्मण के प्रति अनुराग... या रावण के प्रति द्वेष

—इन सब भावों से अलिप्त रहकर जिनकी ज्ञानचेतना ने आतमराम के साथ एकत्व नहीं छोड़ा और परभाव में एकत्व नहीं किया, उन श्री राम की भगवती ज्ञानचेतना वन्दनीय है।

★ ★ ★

हे मुमुक्षु! यदि तू संसार की अशान्ति से थक गया है तो अब उन भावों से पृथक् पड़कर, जहाँ शान्ति भरी है, ऐसे तेरे अन्तरतत्त्व का परिचय कर। संसार में सर्वत्र तुझे सूना-सूना लगता है तो एक बार अपने चैतन्य में देख... उसमें कैसा अच्छा लगता है! कोई अनोखी शान्ति का वेदन होता है!!

परिशिष्ट

मंगल तीर्थयात्रा

वीर निर्वाण संवत् २४८३ में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा सम्पन्न, चरित्रनायक भगवान हनुमान की निर्वाणस्थली मांगी-तुंगी यात्रा का वर्णन एवं संस्मरण।

यह मांगी-तुंगी सिद्धक्षेत्र बहुत पुराना है; यहाँ से श्री रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान, सुडील, गऊ, गवाख्य, नील, महानील, तथा निन्यानवें करोड़ मुनिवर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सम्मेदशिखरजी के अतिरिक्त दूसरे किसी भी तीर्थ की अपेक्षा यहाँ से मोक्ष प्राप्त करनेवालों की संख्या अधिक है। यहाँ विशाल धर्मशाला है, उसके बड़े चौक के मध्य में लगभग 31 फीट ऊँचा सुन्दर मानस्तम्भ है। मानस्तम्भ के अगल-बगल तीन जिनमन्दिर हैं। धर्मशाला के बाजू में ही सिद्धिधाम का सुन्दर दृश्य दिखायी दे रहा है। यहाँ के पर्वत को दो चूलिका है, एक का नाम मांगी और दूसरी का नाम तुंगी है। इस मांगी-तुंगी पर्वत का चढ़ाव बहुत कठिन है, परन्तु ऊपर का दृश्य इतना अधिक रमणीय है कि चढ़ाव की थकान उसी प्रकार विस्मृत हो जाती है, जिस प्रकार निर्विकल्प वेदन के समय विकल्प की थकान विस्मृत हो जाती है।

ऐसी मांगी-तुंगी सिद्धक्षेत्र में सायंकाल पाँच बजे गुरुदेव संघसहित आ पहुँचे, तब क्षेत्र के व्यवस्थापकों ने क्षेत्र का शृंगार करके बैण्ड-बाजों सहित स्वागत किया। संघ की व्यवस्था के लिये सेठ श्री गजराजजी गंगवाल सहकुटुम्ब आये थे और उनकी देखरेख में सुन्दर व्यवस्था हुई थी।

जिनमन्दिरों के दर्शन करके संघ ने भोजन किया, तत्पश्चात्

यात्रा की व्यवस्था सम्बन्धी मीटिंग हुई। यात्रासंघ में प्रमुख श्री रामजीभाई की देखरेख बहुत ही उपयोगी थी। छोटी-बड़ी अनेक कठिनाईयों में से वे मार्ग निकाल देते थे। रात्रि तक अभी कितने ही यात्रियों की मोटर मांगी-तुंगी पहुँची नहीं थी, इस सम्बन्ध में भी वे बहुत लगनपूर्वक खोज कराते थे। यात्रा में स्वयं को बहुत कठिनाईयाँ पड़ने पर भी, उनकी दरकार न करके संघ की व्यवस्था के लिये बहुत परिश्रम करते थे।

तदुपरान्त भाईश्री नेमिचन्दजी पाटनी संघ के मन्त्री थे और संघ की व्यवस्था का अनेकविध उत्तरदायित्ववाला कार्य वे अत्यन्त लगन से सम्हालते थे; विशेषरूप से पूज्य गुरुदेवश्री को प्रवास में कहीं भी तकलीफ न हो, इसके लिये बहुत लगन से सतत्रूप से सम्हाल रखते थे और दिन-रात उनके मन में एक ही बात चला करती थी। संघ के आगे -आगे के प्रोग्राम की व्यवस्था, तदर्थ मार्ग की खोज, निवास इत्यादि की व्यवस्था-यह सब निर्णय करने का उत्तरदायित्व भी उनके सिर पर था। संक्षेप में सम्पूर्ण संघ के संचालन का भार उनके सिर पर था और वे संघ में किसी को कोई तकलीफ न पड़े, इसके लिये बहुत ही लगन और वात्सल्यता से सब संचालन करते थे।

पूज्य बेनश्री-बेन (चम्पाबेन और शान्ताबेन) के कार्यों का तो क्या वर्णन करना! सम्पूर्ण संघ का सभी संचालन उनकी देखरेख के नीचे ही होता था। श्री नेमिचन्दभाई को तथा यात्रा संघ के सभी कार्यकर्ताओं को वे निर्देश और प्रोत्साहन देती थीं। प्रवास की थकान की अवगणना किये बिना बहुत बार तो सख्त सर्दी में रात्रि को बारह-बारह बजे तक भी बैठकर वे सब उलझनों का समाधान देती थीं। तदुपरान्त आवास और भोनादिक में गुरुदेव को किसी प्रकार

की तकलीफ न पड़े, इसके लिये वे बहुत सावधानी से ध्यान रखती थीं। यद्यपि उनको स्वयं को आवास इत्यादि की अनेक कठिनाईयाँ पड़ती, परन्तु गुरुदेव सम्बन्धी व्यवस्था की धुन में वह सब वे भूल जाती थीं... और यात्रा प्रसंगों में बारम्बार हृदय के तार झनझना कर भक्ति द्वारा सम्पूर्ण यात्रा संघ का वातावरण उल्लासपूर्ण बना देती थीं। कृपालु गुरुदेव के साथ यात्रा करने की बहुत समय से प्रवर्तित उनकी भावना पूर्ण होने का ऐसा सुअवसर आवे, तब उनके हर्षोल्लास में क्या बाकी रहे ? अन्तरंग हर्षोल्लास की लहरें वे पूरे संघ में फैला देती थीं। बाकी तो यात्रा दौरान प्रारम्भ से अन्त तक उनके अद्‌भुत कार्यों का वर्णन कर सकने की शक्ति इस बालक की कलम में नहीं है।

गुरुदेव के कोई अचिन्त्य प्रभाव से यात्रा संघ का कार्यक्रम सुन्दर, व्यवस्था और उत्साहपूर्वक आगे चल रहा था... और यात्री कदम-कदम पर गुरुदेव के महान उपकार को स्मरण करते थे।

★ ★ ★

मांगी-तुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा

पौष कृष्ण तीज : प्रातःकाल सवा पाँच बजे नहा-धोकर, धर्मशाला के जिनमन्दिरों के दर्शन करके मांगी-तुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा शुरु हुई। गुरुदेव के साथ भक्ति गाते-गाते सब भक्त चलने लगे। आधे मील चलने के बाद पर्वत की चढ़ाई शुरु हुई। शुरुआत में बीच में सुन्दर रमणीय वन आया। अहा! एक तो सिद्धक्षेत्र की यात्रा का आनन्दकारी प्रसंग, एकदम प्रातःकाल का उपशान्त वातावरण, उसमें ऐसा सुन्दर वन और फिर गुरुदेव जैसे ज्ञानी सन्तों का साथ! उनके साथ इस वन में विचरण करते हुए भक्तों को अनोख आह्लाद होता

था। आह्लादपूर्वक वनवासी मुनिवरों के गुणगान करते हुए उस वन में से मार्ग तय हुआ। अब पर्वत का चढ़ाव शुरु हुआ। आकाश में अभी तारें और चन्द्रमा जगमगा रहे थे; कभी कोई तारा खिर पड़ता देखकर श्री हनुमानजी के वैराग्य प्रसंग का स्मरण होता था तो जगमग चन्द्र को देखकर श्री रामचन्द्रजी की बाल क्रीड़ायें याद आती थीं और इस पर्वत को देखकर उन दोनों की सिद्धदशा का स्मरण होता था। अहा! इस क्षेत्र से वे मुक्ति को प्राप्त हुए!

केवा हशे बलदेव मुनिराज... अहो!
अेने वंदन लाख।
केवा हशे कामदेव मुनिराज... अहो!
अेने वंदन लाख॥

—इत्यादि प्रकार से मुनिवरों का स्मरण करते-करते यात्रियों ने 99 करोड़ मुनिवरों के मुक्तिधाम पर चढ़ना शुरु किया। इस पहाड़ का चढ़ाव बहुत कठिन है। बहुत से यात्री कहते हैं कि जो इस मांगी-तुंगी पर्वत की यात्रा करे, उसे दूसरे पर्वतों की यात्रा तो सहजता से हो जाती है। पर्वत का चढ़ाव ऐसा कठिन होने पर भी, यात्रियों को गुरुदेव के साथ यात्रा की ऐसी उमंग थी कि गुरुदेव के पदचिह्नों पर सब दौड़े चले जा रहे थे।

पर्वत की चढ़ाई कठिन होने से कितनी ही जगह डोली भी नहीं चल सकती थी, इसलिए पैदल चलना पड़ता था। थकान लगने पर बीच में किसी-किसी जगह विश्राम के लिये बैठना पड़ता था। तब पर्वत का सुन्दर वातावरण देखकर पूज्यश्री कहते : **'अहा! यहाँ से अनेक मुनिवर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं और वे समश्रेणी में ऊपर विराजमान हैं।'** पश्चात् सिद्धालय की ओर नजर लम्बाकर, मानो ऊपर विराजमान सिद्ध भगवन्त दिखायी देते हों, उस प्रकार भावपूर्वक

हाथ जोड़कर 'णमो सिद्धाणं' करते थे। यह दृश्य देखकर सब भक्तों को आनन्द होता था और सब उसका अनुकरण करते थे। 'अहा! गुरुदेव के साथ अपूर्व यात्रा होती है और सन्त हमें सिद्ध भगवान दिखलाते हैं।'—ऐसी आनन्द तरंग से सबके हृदय उल्लसित होते थे... वह उल्लास पूज्य बेनश्री-बेन निम्न अनुसार भक्ति द्वारा व्यक्त करती थी—

आनंद मंगल आज हमारे.... आनंद मंगल आजजी...
गुरुवर साथे यात्रा करतां... हैडे हरख न मायजी...
दर्शन सिद्धप्रभुनां आजे... आनंद मंगल थाय जी...
दर्शन सिद्धप्रभुनां करीने... मारे पण सिद्ध थावुं जी....
सिद्धप्रभुजी मारां हैये.... आनंद मंगल वरतेजी....
सिद्धप्रभुनां दर्शने थाशुं... थाशुं सिद्ध स्वरूप जी....
कहानगुरुनो साथ जी मलीयो.... थाशुं सिद्ध स्वरूप जी...
आनंद मंगल आज हमारे... आनंद मंगल आज जी....

—भक्ति की धुन चढ़ने पर भक्तों की थकान उतार जाती थी। पर्वत चढ़ते हुए कहीं तो ऐसा विकट मार्ग आता था कि कगार पकड़-पकड़ कर चढ़ना पड़ता तो कहीं और घुटने के बल होकर गुफाओं में से निकलना पड़ता था। इस प्रकार उत्साह-उत्साह से मार्ग उल्लंघते-उल्लंघते सब मांगीगिरि पर आ पहुँचे।

मांगीगिरि पर एक छोटा कुण्ड है, उसके किनारे कितनी ही छोटी गुफायें हैं; जिनेन्द्र भगवन्त तथा ध्यान में खड़े हुए अनेक मुनिवरों के दृश्य से गुफायें शोभित हो रही हैं। एक गुफा का नाम 'सीता गुफा' है, उसमें सीताजी के चरणों की स्थापना है। सम्भव है कि आर्यिका होने के बाद सीता माता ने इस ओर विचरण किया होगा और यहाँ ध्यान किया होगा। तत्पश्चात् आगे जाने पर एक पुरानी

घिसी हुई प्रतिमा आती है, उसे 'रीशायला बलभद्र' रूप से पहिचाना जाता है। (इस सम्बन्ध में ऐसी किंवदंती है कि उनका अतिशय सुन्दर रूप देखकर नगर की स्त्रियाँ मोहित हो जाती थी, इसलिए वे नगर से विमुख होकर वापिस वन में चले जाते हैं।)

तत्पश्चात् एक मन्दिर आता है, उसमें लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन अनेक जिनप्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं, वे सुन्दर और भाववाही हैं। भगवान श्री रामचन्द्रजी इत्यादि की वीतराग मूर्ति देखकर सभी को बहुत हर्ष हुआ। यहाँ दर्शन करके भक्ति-पूजन किया और पश्चात् प्रदक्षिणा करते-करते थोड़ी देर भक्ति की—

जय रामचन्द्र जय रामचन्द्र जय रामचन्द्र देवा...
माता तोरी कौशल्या ने पिता दशरथ राया... जय राम०
अयोध्या में जन्म लिया तमे अष्टम बलभद्रराया...
मांगी-तुंगी से मोक्ष पधारे हो देवन के देवा... जय राम०
सिद्धालय में आप विराजे वंदन आज हमारां...
कहानगुरु साथे यात्रा करतां आनंद अपरंपारा... जय राम०

इस प्रकार भक्तिपूर्वक मांगीगिरि की यात्रा करके सब तुंगीगिरि की ओर चल दिये। एक ही पर्वत पर मांगी और तुंगी ऐसे दो शिखर (टूँक) हैं। लगभग पौन पर्वत चढ़ने के बाद दो रास्ते पड़ते हैं—एक मांगी की ओर जाता है और दूसरा तुंगी की ओर जाता है, इसलिए मांगी से तुंगी की ओर जाने के लिये पहले थोड़ा सा उतरना पड़ता है और पश्चात् तुंगी की ओर जाया जाता है। यहाँ मार्ग बहुत सकरा और विकट है, इसलिए एक-एक व्यक्ति मुश्किल से चल सकता है और ढाल तथा चढ़ाव बहुत होने से बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। ऐसे मार्ग में आसपास की कगार पर हाथ टेक-टेककर जब गुरुदेव चलते हों,तब पीछे के भक्त मानो वह दृश्य देखकर जय-

जयकार करे और वह मार्ग उल्लंघ जाने के बाद फिर गुरुदेव पीछे के भक्तों को सावधान करे कि ध्यान रखकर आना, धीरे-धीरे आना, उतावल नहीं करना - इस प्रकार विकट मार्ग भी गुरुदेव के साथ आनन्द से तय हो जाता है। इस प्रकार मांगी-तुंगी पर्वत की यात्रा में यात्रियों की, उनमें भी वयोवृद्ध यात्रियों की तो भारी कसौटी हुई; बीच-बीच में विकट मार्ग में डोली भी चल नहीं सकती, इसलिए ऐसे मार्ग में पैदल चलना पड़ता था परन्तु गुरुदेव का उत्साह यात्रियों के पैरों में जोश भर रहा था और गुरुदेव के साथ यात्रा करने के उत्साह ही उत्साह में यात्री विकट मार्ग को उसी प्रकार उल्लंघ जाते थे, जैसे मोक्षमार्गी जीव मोक्ष प्राप्ति के उत्साह में बीच में आ पड़ते विभावों को उल्लंघ जाता है।

मांगी से तुंगी की ओर जाने के विकट मार्ग में बीच में गिरिमाला के सुन्दर दृश्य देखते-देखते और भक्ति की धुन गाते-गाते तुंगी पर पहुँचे। श्री राम-हनुमान-सुग्रीव इत्यादि धर्मात्मा मुनि होकर यहाँ से मोक्ष पधारे हैं। यहाँ श्री चन्द्रप्रभ भगवान का सुन्दर मन्दिर है, उसमें वैराग्य झरती उपशान्त मूर्ति के दर्शन होते ही गुरुदेव ने प्रमोद से कहा : '**अहो! यहाँ तो मानो सिद्ध भगवान ऊपर से उतरे हों, ऐसा लगता है; सिद्ध भगवान मानो सन्मुख ही विराजते हों और उनका ध्यान करने बैठ जायें! ऐसा लगता है। यहाँ से जो करोड़ों मुनिवर मोक्ष को प्राप्त हुए, वे अपने ऊपर ही विराज रहे हैं, देखो!** (ऐसा कहकर गुरुदेव ने ऊपर नजर करके, सिद्धालय की ओर हाथ ऊँचा करके सबको बताया)'। गुरुदेव की ऐसी प्रमोद भरी अमृत वाणी सुनकर यात्रियों को बहुत हर्ष हुआ और सबने भक्ति से दर्शन करके अर्घ्य चढ़ाया.... गुरुदेव ने वैराग्यरस झरती भक्ति करायी। तदुपरान्त गुफा में दूसरे अनेक जिनबिम्ब तथा रामचन्द्रजी इत्यादि के चरण-कमल हैं, वहाँ भी सबने दर्शन-पूजन किये।

राम-हनू-सुग्रीव आदि जे तुंगीगिरि थित थाई।
कोडि निन्यानवे मुक्त गये मुनि, पूजों मन वच काई॥

इस तुंगीगिरि पर सैंकड़ों फीट ऊँची एक सीधी टोंक है, आकाश में ऊँचे-ऊँचे दिखायी देती यह गगनगामिनी टोंक देखते ही, मानों कि यह पर्वत भी रामचन्द्रजी के पीछे-पीछे सिद्धालय में जाने का प्रयत्न करता हो, अथवा यात्रियों को रामचन्द्रजी के सिद्धिगमन का मार्ग दिखलाता हो, ऐसा लगता है और भक्तों के अन्तर में भी सिद्धिपन्थ की प्रेरणा जागृत होती है।

तुंगीगिरि के ऊपर दर्शन-पूजन करने के बाद पूज्य बेनश्री-बेन ने थोड़ी देर भक्ति करायी; भक्ति के समय वह-वह प्रसंग और क्षेत्र के योग्य नये-नये काव्य जोड़कर वे गँवाती थीं, इसलिए विशेष भाव उल्लसित होते थे।

धन्य मुनिश्वर आतमहित में छोड़ दिया परिवार...
कि तुमने छोड़ा सब घरबार।
धन्य रामचंद्रमुनि आतमहित में छोड़ दिया परिवार...
कि तुमने छोड़ा सब संसार।
धन छोड़ा, वैभव सब छोड़ा, जाना जगत असार...
कि तुमने जाना जगत असार।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र को ध्याया,
केवलज्ञान को शीघ्र मिलाया;
चिदानंद चेतन का प्रगटा,
सिद्धस्वरूप रूप हो पाया...

मांगीतुंगी से रामचंद्रजी पाया सिद्धिधाम...
कि तुमसा और नहिं बलराम।
धन्य रामचंद्रजी धन्य मांगीतुंगी, धन्य धन्य हो सिद्धिधाम...
कि तुमसा और नहिं बलराम।

गुरुजी प्रतापे पाया आजे पावन तीरथधाम...
कि तुमसा और नहिं बलराम।

दर्शन–पूजन–भक्ति के बाद ऊपर के ऊँचे शिखर को प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा में बीच में गुफा देखकर उसमें बैठने का मन हो जाता था और गुफावासी होकर कब आत्मध्यान करें, ऐसी भावना हृदय में जागृत होती थी। इस प्रकार भक्ति भावनापूर्वक प्रदक्षिणा पूरी होने पर मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा पूरी हुई और जय–जयकारपूर्वक यात्री नीचे उतरने लगे। तुंगीगिरि चढ़ते–उतरते हुए बीच में एक स्थल में तो बहुत ऊँचा और सीधा चढ़ाव आता है, आसपास की कगार को पकड़कर कठिनतापूर्वक उसे उल्लंघा जाता है। उतरते हुए नीचे के भाग में एक जगह 'शुद्धबुद्धगुफा' आती है, उस गुफा में भी जिनबिम्ब उत्कीर्ण हैं–मानों कि गुफा में बैठकर सन्त शुद्धबुद्ध आत्मा का ध्यान धर रहे हों! इस प्रकार शुद्धबुद्धगुफा देखकर सन्तों को शुद्धबुद्ध आत्मा का स्मरण होता था। इस प्रकार गिरिगुफा का अवलोकन करते हुए... और भक्ति की धुन मचाते हुए आनन्दपूर्वक मांगी–तुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके लगभग साढ़े ग्यारह बजे सब नीचे आये और गुरुदेव के साथ यह दूसरे सिद्धक्षेत्र की यात्रा पूरी हुई।

मांगीतुंगी से सिद्धि प्राप्त सिद्धभगवंतो को नमस्कार।
इस सिद्धिधाम की यात्रा करानेवाले कहानगुरुदेव को नमस्कार।

★ ★ ★

सिद्धक्षेत्र की यात्रा के बाद सभी यात्री आनन्दपूर्वक भोजन करने बैठे। संघ के सभी यात्री एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हों और आनन्द किल्लोल करते हों, यह दिखाव सरस लगता था। परोसने का काम भी यात्री ही करते थे। शुरुआत के दिनों में यह काम ब्रह्मचारी बहिनों इत्यादि ने वात्सल्यपूर्वक उठा लिया था। संघ

को जिमाने में आनन्द आता था। यात्रा की प्रसन्नता में किसी-किसी समय संघ के यात्रियों में से कोई भाई अपनी ओर से संघ को जिमाते थे। यात्रा प्रसंग में किन्हीं-किन्हीं भाग्यवन्त यात्रियों को, जब पूज्य गुरुदेव को अपने आँगन में जिमाने का लाभ प्राप्त होता, तब उन यात्रियों को अपार हर्ष होता था।

★ ★ ★

पूज्य श्री कानजीस्वामी की अपूर्व तीर्थयात्रा में पौष कृष्ण तीज का यह वर्णन चल रहा है। प्रातःकाल मांगी-तुंगी तीर्थधाम की अत्यन्त उल्लास भरी यात्रा कर आने के पश्चात् सबने भोजन किया। अब दोपहर को सुसज्जित विशाल मण्डप में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन चल रहा है। प्रवचन में गुरुदेव कहते हैं—

''देखो, यात्रा में आज यह पहला-पहला प्रवचन यहाँ मांगी-तुंगी सिद्धक्षेत्र में हो रहा है और इसमें सिद्धि के उपाय की बात आयी है। अपने सन्त-मुनिवर जिस धाम में से मुक्ति प्राप्त हुए, उस धाम की यात्रा करने निकले हैं और यहाँ वे सन्त किस भाव से मुक्ति प्राप्त हुए, उस 'भाव' की बात आयी है। इस प्रकार भाव से और क्षेत्र से दोनों प्रकार से तीर्थयात्रा का सुमेल है। सन्त जिस उपाय से मुक्ति को प्राप्त हुए, उस उपाय को जानकर सन्तों के मार्ग में चलना, यह वास्तविक यात्रा है।''

श्रोताजन आनन्दविभोर होकर एक तानपने (एकाग्रतापूर्वक) सुन रहे हैं, सामने ही श्री मांगी-तुंगी पर्वत दिखायी देता है, उसके समक्ष नजर करके गुरुदेव कहते हैं—

'देखो, इस मांगी-तुंगी पहाड़ पर श्री रामचन्द्रजी, हनुमानजी तथा निन्यानवें करोड़ मुनिवर इत्यादि महान सन्त विचरे थे, वे आत्मा के आनन्द का ध्यान करते थे और यहाँ से सिद्धपद पाकर ऊपर समश्रेणी में विराज रहे हैं। ऐसा सिद्धपद प्रगटाने का सामर्थ्य

प्रत्येक आत्मा में है, उसका भान करके ध्यान करने से सिद्धपद प्रगट हो जाता है।'

प्रमोदित होकर गुरुदेव कहते हैं—'**अहा! तुंगीगिरि पर श्री चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति बहुत ही शान्त थी। बहुत देर तक वहाँ बैठे थे और वह ध्यानस्थ वीतराग मुद्रा देखकर बहुत प्रमोद आया था। अहा! शुद्ध चैतन्य का ध्यान कर-करके अनन्त जीव मुक्ति को प्राप्त हुए। अपने को जिस सम्मेदशिखरजी धाम की यात्रा करने जाना है, उस धाम के ऊपर अनन्त सिद्ध भगवन्त अभी समश्रेणी में विराज रहे हैं। मेरा आत्मा भी सिद्ध भगवान जैसा ही है - ऐसा धर्मी जानता है और ऐसे आत्मा के ध्यान द्वारा वह मोक्षपद को साधता है।'** (यात्रा के वर्णन की चालू धारा टूट न जाये तथा ग्रन्थ का आकार बहुत बढ़ न जाये तद्नुसार इस पुस्तक में गुरुदेव के प्रवचनों में से संक्षिप्त महत्त्वपूर्ण अवतरण ही लिये गये हैं।)

यात्रा में गुरुदेव का पहला-पहला ऐसा अद्भुत प्रवचन सुनकर सभी श्रोतागण अत्यन्त प्रसन्न हुए और मण्डप हर्षनाद से गुँजायमान हो गया।

★ ★ ★

सायंकाल पूज्य गुरुदेव मानस्तम्भ के आसपास चौक में घूम रहे थे, साथ में कितने ही यात्री थे। गुरुदेव तीर्थभूमि का भावपूर्वक निरीक्षण कर रहे थे और कभी हाथ में दूरबीन लेकर सामने दिखायी देते मांगी-तुंगी पर्वत का अवलोकन कर रहे थे। तीर्थधाम का वातावरण और दिखाव बहुत सरस है, इसलिए गुरुदेव के साथ घूमते-फिरते उसके दर्शन करने से सबको प्रसन्नता होती थी। गुरुदेव का ऐसा महान प्रभाव तथा यात्रा संघ का ऐसा उल्लास और भक्तिभाव देखकर श्री गजराजजी सेठ इत्यादि बहुत प्रसन्न हुए थे।

रात्रि को मण्डप में विशाल सभा भरी थी, उस समय इस क्षेत्र

के महामन्त्रीजी सेठ मोतीलालजी के स्वागत-वक्तव्य के बाद श्री गजराजजी सेठ ने स्वागत-प्रवचन करते हुए कहा कि :—

पूज्य गुरुदेव संघसहित यात्रा करने को पधारे है, इससे मुझे हर्ष हो रहा है और मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ। आज का वातावरण देखकर मुझे उस काल की याद आती है कि, भगवान महावीरस्वामी का समवसरण जहाँ जाता, वहाँ पर छहों ऋतु के फलफूल पक जाते थे और आनन्द छा जाता था। इसी तरह वर्तमान में भी स्वामीजी के आगमन के समाचार सुनकर आनन्दपूर्वक उसी की चर्चा ठेरठेर (गाँव-गाँव) चल रही है कि स्वामीजी का स्वागत और संघ की व्यवस्था अच्छी से अच्छी किस प्रकार करें? आप लोग बहुत पुण्यशाली हो। आप लोगों का स्वागत करते हुए मैं अपने को धन्य समझता हूँ। पूज्य स्वामीजी के प्रति मुझे भी सद्भावना और भक्ति है। यहाँ की प्रबन्धकारिणी कमेटी की ओर से मैं सभी का स्वागत करता हूँ। बम्बई की तरह हमारे कलकत्ता में भी बड़े-बड़े लोगों की कमेटी बनी है और आपके स्वागत की बड़ी तैयारियाँ चल रही है।

भाषण के बाद क्षेत्र की प्रबन्धक कमेटी की ओर से सेठ गजराजजी ने एक सम्मान-पत्र अर्पण किया - जिसमें लिखा था कि—

श्री परमपूज्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के लघुनन्दन परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के चरणकमलों में श्री सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीजी दिगम्बर जैन के प्रबन्धकर्ताओं की तरफ से—

'×××आज आप से भारत में अध्यात्मधर्म का प्रकाश हो रहा है। ×××जिस प्रकार भगवान महावीर का समवसरण भारत में सर्वत्र विहार कर ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश करता था; उसी प्रकार आप भी इस पंचम काल में जगह-जगह विहार कर जीवों को सच्चा मार्ग

बतलाकर अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर रहे हैं। ×××इस प्रकार दिगम्बर जैनधर्म का आपने उद्योत किया है।×××'

वहाँ के मुनीमजी ने भी श्रद्धांजलिरूप में कहा कि—

इस क्षेत्र पर महाराजजी को व संघ को देखकर मुझे बहुत हर्ष होता है। तीर्थंकर भगवान समवसरणसहित जब इस भूमि में विचरते थे, उस वक्त के वातावरण जैसा दृश्य अभी यहाँ दिख रहा है। अभी स्वामीजी ने संघसहित आनन्दपूर्वक बहुत भक्तिभाव से मांगीतुंगी तीर्थ की यात्रा की। चार वर्ष पहले इस पर्वत के ऊपर जाने का मार्ग इतना विकट था कि लोग दर्शने के लिये तलसते थे और बहुत से लोग नीचे से ही दर्शन करके वापिस लौट जाते थे, किन्तु आज सीढ़ियाँ हो गई हैं, इससे तीर्थयात्रा सुलभ हो गयी है।

ऐसे-ऐसे स्वागत प्रवचन, सम्मान-पत्र तथा संघ की आगत-स्वागत का उत्साह-इससे सहज ख्याल में आ जाता था कि इस ओर का दिगम्बर जैन समाज पूज्य गुरुदेव के दर्शन और स्वागत के लिये कितना आतुर है!

सभा में संघ के यात्रियों की ओर से मांगी-तुंगी तीर्थ के लिये लगभग चार हजार रुपये का फण्ड हुआ था। अन्त में इतने बड़े संघ में लम्बी यात्रा के दौरान आवास इत्यादि की व्यवस्था में सुविधा-असुविधा हो तो परस्पर प्रेमपूर्वक किस प्रकार चला लेना है, इस सम्बन्ध में श्री गजराजजी सेठ ने थोड़ी प्रेम भरी शिक्षा करके यात्रा संघ की सफलता चाही थी। इस प्रकार सभा का कामकाज पूरा होने के बाद तत्त्वचर्चा हुई थी।

तत्त्वचर्चा के बाद संघ की व्यवस्था के आवश्यक कामकाज के लिये पूज्य बेनश्री-बेन ने एक खास सभा बुलायी थी। उसमें मुरब्बी श्री रामजीभाई, मन्त्री श्री नेमिचन्दभाई, ब्रजलालभाई इंजी., पण्डित

श्री हिम्मतलालभाई इत्यादि के सहयोग से संघ के छोटे-बड़े प्रत्येक प्रकार के काम-काज का विचार करके उसका बंटवारा कर दिया गया था। भोजनव्यवस्था; बस में यात्रियों को बैठाने की व्यवस्था; आवास में प्रत्येक जगह सबको योग्य जगह प्राप्त हो, इस सम्बन्धी व्यवस्था; संघ के कार्यक्रम सम्बन्धी प्रत्येक जगह तार-पत्र की व्यवस्था, इत्यादि अनेकविध कार्यों की विचारणा करके उत्साही कार्यकर्ताओं को वह-वह कार्य सौंप दिया गया था। इसके लिये पूज्य बेनश्री-बेन, रात्रि के समय सर्दी होने पर भी लगभग बारह बजे तक सभामण्डप में बैठी थीं।

प्रतिदिन सैंकड़ों मील की यात्रा तथा तीर्थों की यात्रा करते-करते सवा पाँच सौ यात्रियों के इतने बड़े संघ की सब प्रकार की व्यवस्था भी करते जाना- यह तो एक छोटे से राज्य का कार्यभार चलाने जैसा अटपटा काम था, ऐसा होने पर भी गुरुदेव के महान प्रताप से यात्रा संघ को कुशल नेता और उत्साही कार्यकर्ता मिल जाने से किसी भी प्रकार की कठिनता के बिना संघ का प्रवास आनन्द से चल रहा था, इतना ही नहीं किन्तु गाँव-गाँव की समाज की ओर से भी अपेक्षा से अधिक सहयोग बहुत प्रसन्नता से मिल रहा था।

★ ★ ★

पौष कृष्ण चौथ : सवेरे यात्रियों ने धर्मशाला के जिनमन्दिर में दर्शन-पूजन किये, सामने ही नजदीक दृष्टिगोचर मांगी-तुंगी सिद्धिधाम के पुनः दर्शन किये। विगत दिन जिनकी यात्रा बाकी रह गयी थी, वे यात्री आज यात्रा करने गये। दर्शन-पूजन के बाद गुरुदेव का प्रवचन हुआ। अहा! आज का प्रवचन अद्‌भुत था। शुरुआत में गुरुदेव ने कहा कि इस सिद्धक्षेत्र में मंगलाचरणरूप से समयसार की पहली ही गाथा पढ़ते हैं—

वंदित्तु सव्व सिद्धे...

सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार की गाथा और सामने ही सिद्धक्षेत्र! मानों सिद्ध भगवन्त इस यात्रा महोत्सव में हाजरा-हुजूर पधारे हों, ऐसे उल्लास से गुरुदेव की वाणी का प्रवाह बहता था। **'अहो! मैं सर्व सिद्धों को नमस्कार करता हूँ... हे सिद्ध भगवन्तों! मेरे अन्तर में आपको स्थापित करके मैं नमस्कार करता हूँ।'**

'देखो, यह यात्रा का अपूर्व मांगलिक! यात्रा के मंगल में सिद्ध भगवन्तों को बुलाया। हे सिद्ध भगवन्तों... और हे जगत के सन्तों! मेरे मांगलिक के मण्डप में पधारो... मेरे हृदय में विराजो; मेरे हृदय में आपको साथ रखकर मैं आपके पंथ में अप्रतिहतरूप से चला आ रहा हूँ।'

'ढाई द्वीप में जहाँ-जहाँ पंच परमेष्ठी सन्त विराजते हों, उन्हें मेरा नमस्कार! अहो, मोक्ष के साधक मुनिवर जहाँ-जहाँ विचरते हों, उन सर्व का मैं आदर करता हूँ, सिद्धपद के साधक सर्व सन्तों को मैं मेरे आँगन में बुलाता हूँ। हे सिद्ध भगवन्तों! और साधक सन्तों! मेरे आँगन में पधारो.. पधारो..! मेरा आँगन विकारी नहीं, परन्तु मेरे शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान के आँगन में मैं आपको पधराता हूँ।'—

हूँ कइ विध पूजुँ नाथ! कइ विध वंहुं रे...
मारे आंगणे सिद्धभगवान जोई जोई हरखुं रे...

वाह! साधक सन्तों, ऊपर से सिद्ध भगवन्तों को अपने आँगन में उतारकर, अपने आत्मा में स्थापित कर नमस्कार करते हैं।

'देखो, भाई! इस संसार की चार गति में कहीं जीव को विश्राम नहीं है, यह सिद्धगति ही जीव को परम विश्रान्ति का स्थान है। इस पैंतालीस लाख योजन के ढाई द्वीप में अणु-अणु से अनन्त जीव मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, कोई भी जगह ऐसी नहीं कि जहाँ से अनन्त

जीव सिद्धि को प्राप्त न हुए हों। ऐसे सिद्धपद की प्राप्ति, वह आत्मा का ध्येय है और उस ध्येय को ताजा करने के लिये, जहाँ से जीव सिद्धि प्राप्त हुए, ऐसे तीर्थधाम की यात्रा की जाती है।'

अहा! गुरुदेव के इस प्रवचन में साधकभाव का अद्‌भुत प्रवाह बहता था... साधकभाव की धारा उल्लसित-उल्लसित होकर मानों कि सिद्धपद का अभिनन्दन करती थी... साधक के अन्तर में सिद्धपद की कैसी लगन होती है, यह व्यक्त होती थी... और मुमुक्षु श्रोता तो मुग्ध बन जाते थे।

प्रवचन पूरा हुआ कि तुरन्त ही श्री जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा निकली। भगवान के रथ को भक्त स्वयं उल्लास से खींचते थे। भक्तों की उमंग देखकर गुरुदेव भी हर्षित हो रहे थे... और गुरुदेव का हर्ष देखकर बेनश्री-बेन बहुत ही भक्ति कराती थीं। इस प्रकार हर्षोल्लासपूर्वक भगवान की रथयात्रा पूर्ण हुई।

आज गुरुदेवश्री का भोजन सेठ गजराजजी के यहाँ हुआ था; गुरुदेव के आहारदान का लाभ प्राप्त होने से श्री सेठ गजराजजी तथा सेठानी लक्ष्मीबेन को बहुत हर्ष हुआ था। भोजन के पश्चात् संघ ने प्रस्थान की तैयारी की, मोटरें लाईन से लगायी गयीं, ऊपर सामान का ढ़ेर लगा दिया गया और यात्री सायंकाल के लिये भातु (नाश्ता-पानी) लेकर अपनी-अपनी मोटर में बैठ गये.... थोड़ी देर में सिद्धक्षेत्र की जय-जयकार करती हुई एक के बाद एक मोटरें छूटने लगीं और धूलिया की ओर रवाना हुईं।

★ ★ ★

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.